• मेरी प्रिय व्यंग्य रचनाएं

—बालेन्दु शेखर तिवारी
एम०ए० पी-एच० डी०डी०लिट
रीडर हिन्दी विभाग
रांची विश्वविद्यालय,
रांची-834008

मेरी प्रिय व्यंग्य रचनाएं / व्यंग्यकार : बालेन्दु शेखर तिवारी / प्रकाशक : राज पब्लिशिंग हाऊस, 9/5123, पुराना सीलमपुर पूर्व, दिल्ली-110031/प्रथम संस्करण : 1988 / मुद्रक : मनोज प्रिंटर्स, 9/2757, कैलाश नगर, दिल्ली-110031 मूल्य पच्चीस रुपये मात्र

MERI PRIYA VAYANGAYA RACHNAYAN :
A Collection of Satires
By
Shri Balendu Shekhar Tiwari Price Rs. 25/-

□ यह भी कहना जरूरी है कि……

हास्य और व्यंग्य जीवन के सहज पक्ष हैं। साहित्य के अंतर्गत दोनों का समावेश उतना ही स्वाभाविक है जितना कि जीवन की अन्य अनुभूतियों का। किन्तु हास्य और व्यंग्य का एक प्रमुख कार्य जीवन की विद्रूपता और विकृति को प्रकट करना है।

विद्वानों ने हास्य और व्यंग्य की कई श्रेणियां निश्चित की है। व्यंग्य हास्य के बिल्कुल विपरीत होता है। हास्य मे सहानुभूति प्रेम आदि का प्राबल्य होता है जबकि व्यंग्य में नैतिकता, दया एवं उदारता का अभाव होता है और वह मानव की शारीरिक मानसिक और सामाजिक असंगतियों पर निर्दय आघात करता है। व्यंग्य वस्तुतः सामयिक सामाजिक यथार्थ के उद्घाटन का एक सशक्त शस्त्र है। व्यंग्य समाज के जीवन की गलित वासनाओं की कुप्रवृतियों का आपरेशन करता है जिसमें सामाजिक अग की यह विकृति कही समस्त जीवन को ही विकलांग और गलित न बना दें।

सक्षेप में कहा जाये तो हास्य और व्यंग्य में उतना ही अन्तर है जितना चौराहे पर खड़े सिपाही और अस्पताल के डाक्टर में होता है। दोनों की दृष्टि में समाज हित है। लक्ष्य एक है किन्तु दृष्टिकोण भिन्न है। हास्य और व्यंग्य की जोडी को 'और' के माध्यम से दूर-दूर नही किया जा सकता है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर श्री तिवारी की हास्य-व्यग्य की पुस्तक में संग्रहित हास्य-व्यंग्य के लेखो के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि जहां उनके लेख एक ओर मन को बरबस हंसने को बाध्य कर देते हैं वही यथार्थ में विद्यमान अनेक कुरीतियों पर अपनी चुटीली तीखी

लिखना और नहीं लिखना

वे सारे प्राणी लोकल भाषा में लटक कहे जाते हैं जिन्हें हिन्दी विभाग में घटने वाली समस्त अघट घटनाओं के सूत्रधार डॉ० पतित पावन के आसपास लटकता हुआ पाया जाता है। लटकों का अपना कोई चेहरा और वजूद इस असार संसार मे नहीं है। उनका उद्भव और विकास इस धराधाम पर लटकने मात्र के लिए हुआ है। इन लटकों की लिस्ट में डॉ० पतित पावन के रिसर्च स्कालरों, भक्तों और स्वजातीय छात्रों की गिनती होती है। लटकने के साथ-ही-साथ लटकगण अहर्निश डॉ० पतित पावन का मुंह जोहने का पुनीत कार्य भी करते हैं। जिस दिन डॉ० पतित पावन का मुखारविन्द मलीन होता है उस दिन सारे लटकों के चेहरे पर बाप की मौत जैसी विशुद्ध मुर्दनी छा जाती है। और, जिस दिन डॉ० पतित पावन चहकते हुए नजर आते हैं उस दिन लटक वर्ग के शरीर में जहां-तहां उपलब्ध सारी वाछें खिली रहती हैं।

दूर रिक्शे पर डॉ० पतित पावन के चश्मे को चमकता हुआ देखकर समस्त लटकगण हिन्दी विभाग के गेट तक लपक आये। सबने रास्ते पर अपने-अपने मौलिक पलक-पांवड़े बिछा दिये। डॉ० पतित पावन को संतप्त देखकर सारे लटकों के मुखड़ों पर सफेदी पुत गई। स्टाफ रूम तक सभी डॉ० पतित पावन के साथ लटकते चले गये। वातावरण की वजनी मौनता को भंग करते हुए एक लटक-शिरोमणि ने शंका की—

'आज फिर विहंगवा के बारे मे कुछ खबर मिली है क्या सर ?'

'हां, उसकी कविता 'नई दुनिया' में छपी है इस महीने।' डॉ० पतित पावन मर्माहत से बोले।

यह सुनकर सारे लटक एक ऐसी अव्यक्त भाषा में प्रो० विहंग को नितांत प्रामज गालियां देने लगे, जिसकी चर्चा कामता प्रसाद गुरु के

व्याकरण में बुदबुदाना नामधारी क्रिया के रूप मे मिलती है। और डॉ० पतित पावन अनमनी मुद्रा में कुर्सी पर पसर गए।

पिछले महीने भी वे इसी शैली मे अनमने हो गए थे। उस महीने प्रो० विहंग की कहानी कलकत्ते की एक पत्रिका में छपी थी। दुख की बात यह है कि यह हादसा हर महीने साकार हो रहा है। प्रो० विहंग की कोई-न-कोई रचना कहीं-न-कहीं छप जाती है और डॉ० पतित पावन अपने आप को असहाय अनुभव करने लगते हैं। न तो वे विहंग की हत्या कर पाते है और न हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं का छपना बन्द कर पा रहे हैं। इस लाचारी का कुफल यह है कि हिन्दी पत्रिका का छपना दुर्भाग्यवश बदस्तूर जारी है और प्रो० विहंग की रचनाएं उनमे छपकर डॉ० पतित पावन की लोमश छाती पर उम्दा किस्म की मूंग दलने का शुभ कार्य कर रही हैं।

कुर्सी पर पसरे डॉ० पतित पावन लटकों के चले जाने के बाद निर्वेद की भूमिका में चले गये। उनके दुलारे लटकों के महाभिनिष्क्रमण का कारण यह हुआ कि धीरे-धीरे हिन्दी विभाग के शेष पराक्रमी प्राध्यापक आने लगे। उस समय सबने देखा कि मारे वेदना के डॉ० पतित पावन का रंग ब्लैक बोर्ड की तरह गाढ़ा हो गया है। पहले जुनेजा आए, फिर शर्मा जी और डॉ० भगत। सभी प्रथम श्रेणी के विहंग पीड़ित थे और संसार के अन्य सभी हिन्दी प्राध्यापकों की तरह एक दूसरे को परम मूर्ख और असाहित्यिक समझते थे। सबको विहंग विषयक ताजा समाचार पहले ही मिल चुका था। इस नाते सबके चेहरे पर श्रीहीनता पोस्टर की तरह चिपकी हुई थी। स्टाफ रूम मे बिखरी हुई कुर्सियो को इकट्ठा कर सभी गोष्ठी की मुद्रा में बैठ गए और स्थिति की विकटता पर विचार करने लगे।

विषय का प्रवर्तन डॉ० पतित पावन ने ही किया—

'आप सबको यह मालूम हो ही गया होगा कि विहंग की एक कविता इस माह 'नई दुनिया' मे छपी है। हम लोग अपने ही जरूरी कामों में व्यस्त हैं और इधर वह हर महीने कहीं-न-कहीं छपकर इस विभाग का

सतीत्व नष्ट कर रहा है। इसका गहरा असर छात्रों पर भी पड़ रहा है। हालत यह है कि छात्र आशा करने लगे हैं कि हम भी विहंग की तरह पत्रिकाओं में छपें और…'

इस अवसर पर शर्मा जी ने डॉ० पतित पावन को याद दिलाया— 'छपना कौन-सी बड़ी बात है सर ! सन् 69 की कालेज पत्रिका में आपका एक लेख छपा ही था। आज तक हम लोगों को याद है।'

डॉ० पतित पावन को जैसे गुजरा हुआ अतीत स्मरण हो आया। बोले—'हां शर्मा ! वह लेख बड़ा ऐतिहासिक था। उतने ऊंचे स्टैण्डर्ड का लेख तो कभी-कभी लिखा जाता है इस देश में। वरना हिन्दी में अच्छा लिखने-सोचने वाले लोग कितने हैं ? और यह विहंग है कि कूड़ा-करकट लिखकर विभाग को बदनाम कर रहा है।'

अब जुनेजा को गुप्त सुसमाचार सुनाने का स्वर्ण अवसर मिला। जुनेजा ने अपनी चिरपरिचित फुसफुसाहट भरी रहस्यवादी शैली मे कहा—

'कूड़ा तो वह लिखता ही है सर ! एक और खबर मिली है। वह हम सबको कीट-पतंग समझता है। भारी दुष्ट और महाघमण्डी है सर !'

'ऐसा उसने कहा ?'

कई आवाजें आयी, तो जुनेजा को सप्रसंग व्याख्या करनी पड़ी— 'हां भई, कहा है उसने। परसो मैं उसकी पिछली कहानी की तारीफ कर रहा था तो उसने कहा कि हमारे विभाग में सिर्फ कीड़े-मकोड़े भरे हुए हैं, कोई साहित्य मे दिलचस्पी नही लेता।'

इस खबर से डॉ० पतित पावन को ब्रह्मानन्द सहोदर सुख मिला। वे उछल पड़े और उत्साहित स्वर में बोले, 'यह खबर अध्यक्ष तक पहुंचानी चाहिए। भगत जी ! आप तो इन दिनों उनसे बेहतर चिपके हुए हैं। कल रात दस बजे तक आप उनके साथ पाये गये हैं।'

'कौन ! मैं ?' गुप्तस्थल पर गार्जियन द्वारा पकड़ी गई नायिका की तरह डॉ० भगत सहमकर बोले।

'हां-हां, आप ! आप अध्यक्ष को यह खबर दे दें कि विहंग समूचे विभाग को कोट-पतंग समझता है।'

डॉ० पतित पावन के इस आदेश को संकेत-भाषा में शिरोधार्य कर डॉ० भगत चोर-सी सतर्कता दर्शाते हुए उठे और कक्षा की ओर चले गये।

षष्ठ वर्ष के पुराने रजिस्टर के साथ डॉ० भगत को स्टाफ रूम से निकलते देर नहीं लगी कि कमरे में दो मिनट तक शोक श्रद्धांजलि का मौन छा गया। हिन्दी के विद्वानों के बीच जब बातचीत शुरू हुई तो टॉपिक बदल गया। इस बार डॉ० भगत द्वारा की गई अध्यक्ष की बहुविध सेवाओं पर टीका-टिप्पणी होने लगी। फिर जुनेजा ने इतिहास का वह अध्याय सुनाया, जिसमें डॉ० भगत द्वारा लिए गए पहले वर्ग का रोमांचकारी वर्णन है। यह एक स्थापित सत्य है कि वह दिन बड़ा लोमहर्षक हो गया था, जिस दिन डॉ० भगत पहली बार कक्षा में पढ़ाने गये थे। आकाश में देवताओं की भीड़ इस दृश्य को देखने के लिए जमा हो गई। धरती पर भी पी० जी० कैम्पस के आसपास महामानव समुद्र उमड़ आया। सबकी उत्सुकता इसी बात में थी कि डॉ० भगत कैसे पढ़ाएंगे। विस्मय के मारे सबके चेहरे चहक रहे थे कि दूर से डॉ०भगत अपनी सनातन वेशभूषा में आते दिखे। उनकी मौलिक साज-सज्जा में केवल यही नवीनता थी कि उस दिन उनकी पत्नी ने उनके प्रशस्त ललाट की विषुवत रेखा पर तिलक कर रखा था। हाथ के ब्रीफकेस को अलौकिक गति से हिलाते हुए, डॉ० भगत विभाग में घुसे और समयानुसार षष्ठ वर्ष की कक्षा में गये। जग की रीति के अनुसार पहले डॉ० भगत ने पूरी निष्ठा के साथ उपस्थिति ली। इस दिशा में भी उनका प्रयास पहला ही था, सो जिस हाजिरी को शेष अध्यापकगण सात मिनट में समाप्त कर देते हैं, उसमें डॉ० भगत ने सत्ताइस मिनट लगाये। उपस्थिति की बही बन्द करने के बाद कमरे में वह शून्य छा गया, जिसकी चर्चा कबीरदास ने 'सुन्नमहल' नाम से की है। कुछ मिनट तक डॉ०भगत की जबान ही नहीं खुली, फिर उन्होंने भाषण शुरू किया—

'मैंने प्रेमचंद के जूतों पर रिसर्च की है, इसीलिए मुझे प्रेमचंद की वह किताब पढ़ाने का काम सौंपा गया है जिसका नाम गोदान है। भाइयों और बहनो, गोदान वही किताब है जिसे प्रेमचन्द ने लिखा है और इस किताब को मैंने भी एम०ए० के कोर्स मे पढ़ा था। इस किताब को मुझे जिस विद्वान ने पढ़ाया था, वे अब भी यूनिवर्सिटी की सेवा मे हैं, फिर भी न जाने क्यों यह किताब मेरे माथे थोप दी गई है। मैं समझ नही पा रहा हूं कि इसमे पढ़ाना क्या है और मैं क्या पढ़ाऊ ? बेहतर यह होगा कि मैं तनिक अध्यक्ष महोदय से पूछ लेता हूं कि मुझे क्या पढ़ाना है और कैसे पढ़ाना है।...'

इतना कहकर डॉ० भगत रजिस्टर कक्षा में ही छोड़कर भागे और पीछे-पीछे छात्र-छात्राओं का समूह भी उनका गुण-कीर्तन करता हुआ कमरे से निकला। उस दिन डॉ० भगत अध्यक्ष के कक्ष मे जाने से पूर्व बाथरूम की सेवा मे गये थे और तदुपरांत अध्यक्ष महोदय के सम्मुख प्रस्तुत हुए। उनकी समस्या सुनकर अध्यक्ष मन्द गति से मुस्कराये थे और बोले—'ठीक है, धीरे-धीरे सब ठीक हो जायेगा!' वह दिन था और आज का दिन है। सीन के साथ डॉ० भगत की घोर असहमति बरकरार है। उसकी इस पूर्वकथा को हिन्दी विभाग में समय-समय पर लवण-चूर्ण मिलाकर जुनेजा सुनाया ही करते हैं।

इस रोचक चर्चा मे लोग अभी उलझे ही थे कि स्टाफ रूम में प्रो० विहंग आ गए। सबने बारी-बारी से 'नई दुनिया' में छपी प्रो०विहंग की ताजी कविता की प्रशंसा की और उन्हें बधाई दी। समर्पिता की मुद्रा मे विहंग ने सारी बधाईयां बटोरकर अपने बैग मे डाल ली। उन्होने यह सूचना भी दी कि उनकी कई रचनाए कई पत्रिकाओ द्वारा प्रकाशनार्थ स्वीकृत हुई है। डॉ० पतित पावन ने एक बार फिर बधाइयो का सिल-सिला शुरू किया और प्रो० विहंग ने फिर बधाईयों का अम्बार सहेजकर रख लिया। इस बीच डॉ० भगत कक्षा से आ गए और अगली घंटी के लिए प्रो० विहंग जुनेजा जी और रजिस्टर के साथ बरामदे मे निकल आए।

एकान्त पाकर प्रो० जुनेजा ने अपनी सनातन रहस्यपूर्ण भंगिमा में कहा—'एक बात मालूम है आपको विहंग जी ? किसी ने अध्यक्ष से कह दिया है कि आप विभाग को कीट-पतंगों का अड्डा कहते हैं। आप जरा उनसे मिलकर स्पष्ट कर लें।'

और प्रो० विहंग चिन्ता के सागर में डूबते-उतराते कक्षा में गए। वर्ग में कामायनी की नाटकीयता पर संक्षिप्त भाषण देकर सरदर्द के आधिक्यवश वे घर लौट आये।

घर पहुंचकर नई पीढ़ी के उभरते रचनाकार प्रो० विहंग ने पहला काम तो यह किया कि पत्नी और बच्चों को जमकर पीटा और फिर एक गिलास पानी पीकर लेट गये। लेटकर उन्होंने आत्महत्या से लेकर साहित्य से रिटायर हो जाने तक की सारी सम्भावनाओं पर विचार किया और जल्दी ही खर्राटे भरने लगे। ●

मेरे पड़ोसी

माफ कीजिएगा, मैं अपने उन पड़ोसियों के बारे में आपको कुछ ही बताऊंगा जो इन दिनों मेरे आसपास बसे हैं। आज मैं केवल भूतपूर्व पड़ोसियों की ही चर्चा कर सकूंगा जो सचमुच अभूतपूर्व थे। मेरा विश्वास है कि उन सारे सज्जनों और सज्जनियों की आत्मा इस धराधाम पर जहां भी होगी, सुख से होगी और पड़ोसियों को दुख दे रही होगी। वाह ! कैसे होनहार पड़ोसी थे वे और कैसी मज़ेदार पड़ोसिनें थीं वे। अब वैसे पड़ोसी चिराग लेकर खोजने पर भी नहीं मिलते हैं। एक महाशय सुबह अखबार ले गए और शाम तक उसे वापस कर गए। यह देखकर अपार कष्ट हुआ। पहले इस मोहल्ले में इस स्तर के पड़ोसी नहीं रहते थे। वह जो सुरिन्दर लाल पास वाले फ्लैट में रहते थे, जब कभी अखबार लेकर गए उसे वापस करने के लिए नहीं आये।

इस महान् देश में कुछ पैसे के अखबार के लिए पड़ोसी-धर्म नहीं बिगाड़ा जा सकता, लिहाज़ा हम हमेशा बाबू सुरिन्दर लाल को अखबार सादर समर्पित कर देते थे। बाद में तो हालत यह हो गई कि हाकर उन्हीं के मकान में मेरा अखबार डाल देता था और मैं समय निकालकर वहीं अपना अखबार पढ़ लेता था। सुरिन्दर लाल में एक आदर्श पड़ोसी के सभी शास्त्रीय गुण कूट-कूटकर भरे हुए थे। वे हमारे हर सुख में रोते थे और हर दुख में हंसते थे। आज उनसे हुई पहली मुलाक़ात का दृश्य स्मरण आता है तो मन आनन्द विभोर हो जाता है। पहली बार जब मैंने उनके दर्शन किए थे, उस समय वे अपने बालगोपालों पर लोकल गालियों का कुशल प्रयोग कर रहे थे। मुहल्ले में एकदम नवागंतुक थे और मैं उनका नाम तक नहीं जानता था। उसी दिन रात के आठ बजे

जब मैं एक सम्पादक की फरमाईश पूरी करने की मुद्रा में था और एक रचना के प्रसव की पूरी तैयारी कर चुका था, वे हमारे ड्राइंगरूम मे पधारे—'जी ! मुझे सुरिन्दर लाल कहते हैं। रहने वाला पटने का हूं, हाल मुकाम राची है। वह जो मेरी वाइफ है न, उन्होंने बताया कि आप बहुत लिखते हैं। आपके यहां तो बहुत सारी किताबें हैं, पत्रिकाएं भी। ये सब खरीदी हैं, आपने ?'

मैंने निवेदन किया—'जी नही, जहा-तहा से चुराई हैं।'

इस साफगोई पर वे बड़े प्रसन्न हुए—अच्छा ! तभी इतनी किताबें हो गई हैं। यू नो, विमल मित्र की किताबें मुझे खूब पसन्द हैं।

मैं समझ गया कि सामने रखी विमल मित्र की नई कृति पर बाबू सुरिन्दर लाल की निगाह है। मैंने वह उपन्यास उन्हें सौंप दिया, वे सहर्ष लेकर चले गये। लेकिन जल्दी ही लौट आये। इस बार वह अपने हाथ में एक कैलेण्डर लेकर आये थे। कहने लगे—लाइए, आज की मुलाकात की *यादगार के रूप में यह कैलेण्डर आपके रूम में टांग दूं। लाख मना* करने पर भी उन्होने खुद हथौड़े से कील ठोंकी, कील मे कैलेण्डर को टांगा और विभिन्न कोणो से उसका मुआयना करने के बाद प्रसन्न मुद्रा में अपने घर गए। आधी रात के समय जब हम लोग सो रहे थे, दरवाजे पर जोरदार दस्तकें हुई। दरवाजा खोलने पर सुरिन्दर लाल नजर आये।

कहने लगे—'माफ कीजिए, आपको बेवक्त तकलीफ दी। मुझे ऐसा *लगा कि कैलेण्डर को दायी दीवार की जगह बायी दीवार पर टांगा जाए* तो बेहतर रहेगा। वैसे आपकी क्या राय है ?'

उस समय मैं राय देने के मूड में एकदम नही था। उन्होने मनोयोग पूर्वक कैलेण्डर को दायी ओर से बायी ओर ट्रांसफर किया। लगभग डेढ़ बजे हम लोग दुबारा सोने गए। सुबह होने पर वे आंख मलते ही आ धमके—वाह ! कितना अच्छा लगता है यह कैलेण्डर इस दीवार पर ! यू नो ? आप अपने सोफे का कवर बदल दीजिये और यह परदे भी। इनका रंग कैलेण्डर से मैच नही खा रहा है।

हम उनके सत्परामर्श को चुपचाप सुनते रहे। उनका कैलेण्डर-पुराण तब तक चलता रहा जब तक उनके आफिस-गमन का समय नहीं हो गया। इसके बाद दो दिनों तक उनके दर्शन नहीं हुए। पता चला पटना गए हैं। तीसरी रात का सवेरा जब नज़दीक था, लगभग दो बजे उनकी आवाज़ दरवाज़े पर सुनाई दी। खोलने पर प्रकट हुए—

अभी-अभी पटने से लौटा हूं। सोचा, जरा कैलेण्डर को देख लूं। अच्छा लग रहा है न ? बहुत खूबसूरत कैलेण्डर है। कई लोग मांग रहे थे, लेकिन मैंने आप ही को दिया। आखिर आप अपने पड़ोसी हैं। अच्छा, अब चलूं, कुछ सो लूं।

वे चले गये और उनके साथ-साथ हमारी नींद भी लापता हो गई। अगले दिन उनके साक्षात्कार नहीं हुए। रात के बारह बजे हमारी नींद उन्होंने फिर तोड़ी।

कहने लगे, आज तीस तारीख है, कल पहली है। मैंने सोचा, कैलेण्डर का पन्ना बदल दूं। उन्होंने पन्ना बदला, फिर सोफे पर बैठकर क्षमा-याचना करने लगे कि पिछले दिन मुलाकात नहीं कर सके। जब वे हमारे यहां से विदा हुए तो हमने पहला काम यह किया कि उनके द्वारा टांगे गये कैलेण्डर को उतारकर खण्ड-खण्ड कर डाला और निश्चिन्त होकर सो गए। सुबह होने पर सुरिन्दर लाल ने कैलेण्डर के बारे में सूक्ष्म जासूसी की, लेकिन तब तक उसके टुकड़े अग्निदेव का आहार बन चुके थे। सच तो यह है कि जब तक बाबू सुरिन्दर लाल हमारे पड़ोस में रहे, वे प्रातः स्मरणीय, दोपहर-स्मरणीय, सायं स्मरणीय और रात्रि-स्मरणीय बने रहे। जब वे घर बदलकर जाने लगे तो उनके सुपुत्र ने विदा-बेला में कहा—अंकल ! आप हमें भूल तो नहीं जाएंगे ?

हमने कहा—नहीं, बेटे ! खिड़कियों के बन्द शीशे, चकनाचूर घड़ी, बन्द रेडियो—ये सब बहुत दिनों तक तुम्हारी याद दिलाते रहेंगे।

वह दिन था और आज का दिन है। बाबू सुरिन्दर लाल सपरिवार हमारी स्मृतियों में खड़े हैं और बोर कर रहे हैं। कुछ अरसा पहले हमारे पड़ोस में एक भारी-भरकम इन्जीनियर रहते थे। इन्जीनियरी के २.

मे इनकी देन पता नही क्या थी, लेकिन तबला माशाअल्ला खूब बजाते थे। उनके घर मे इतनी थोक मात्रा मे दर्शनीय किस्म की कन्याएं थी कि वे किसी को भी छछिया भर छाछ पर नचा सकती थी। एक बार उनके घर मे आग लगी। आग पर काबू पाने पर आधा घंटा लगा और फायर ब्रिग्रेड के जवानो पर काबू पाने मे लगभग दो घटे लग गए। उस दिन हमारा भरा-पूरा परिवार बैठा था कि भरी-पूरी महिला का सहमा प्रवेश हुआ। हमारे नये पड़ोसी इंजीनियर की धर्मपत्नी थी यह। देखने में पचास वर्ष के करीब उम्र लगती है, लेकिन अपने आप को चालीस की समझती हैं। तीस वर्ष की महिलाओ जैसे कपड़े पहनती हैं और बीस वर्षीय युवतियो जैसी हरकतें करती है। वे हमारे घर सौ रुपये के नोट की चेंज मांगने आई थी। हमने कहा—'देखिये, चेंज तो नही है, लेकिन यह पूछकर आपने हमारा जो सम्मान बढ़ाया है, उसके लिए हम बहुत-आभारी हैं।'

उन्होने फरमाया—

'अजी, चेज तो बहाना है। दरअसल मैं आप सबसे परिचय ही बढाने आई हूं। कभी आइये न हमारे उनसे मिलने। वे अकेले बहुत बोर होते हैं, कोई बात करने वाला ही नही'। इस आमंत्रण को अंगीकार कर मैं दूसरे ही दिन उनके घर गया। देखा, इंजीनियर साहब नाखून काटने का कठिन परिश्रम कर रहे हैं और उनकी धर्मपत्नी मेवादायिनी सेवा कर रही थी। उन्होने ही हंसते हुए उठकर मेरा स्वागत किया। बेचारे इंजीनियर साहब शरीर की भारी-भरकमता और पत्नी के डर के मारे उठ नहीं सके। उनकी पति-परायणा पत्नी चाय बनाने अन्दर चली गई। अब कमरे मे दो ही रह गये—मैं और इंजीनियर, इंजीनियर और मैं। मैंने उनसे पूछा—और सुनाइये वर्माजी, क्या हाल-चाल है ?

उन्होंने धीरे से कहा, 'अच्छा है।'

हम दोनों चुप हो गए। उन्होने नाखून काटने में अपना ध्यान एक बार फिर केन्द्रित किया। मैंने उनकी मेज पर रखी हुई कलमों की निब

धीरे-धीरे तोड़ना शुरू किया। दोनों [illegible] के [illegible] फट जाने पर उन्होंने अपना सिर ऊपर उठाया और कहा, 'और सुनाइए [illegible]जी, क्या हाल-चाल है ?'

मैंने भी शांतिपूर्वक कहा, 'अच्छा है।'

बातचीत की ट्रेन आगे नहीं बढ़ रही थी। हम दोनों एक ही स्टेशन पर रुके हुए थे। बार-बार हमारी निगाहें उस परदे की ओर उठती थीं जिधर से चाय आने वाली थी। मैंने एक बार फिर कोशिश की—और सुनाइए वर्माजी, क्या हालचाल है ?

वे फिर बोले, 'अच्छा है।'

तभी उनकी अर्धांगिनी चाय लेकर प्रकट हुईं। हम दोनों ने तेजी से चाय पी, एक-दूसरे से मुक्त होने की मुद्रा में आए। उनकी पत्नी मुझे बाहर तक छोड़ने आयीं!

'आज कितना अच्छा लगा आप आए तो! वे दिन भर बोर होते हैं, कोई बात करने वाला ही नहीं। इसी तरह आते रहेंगे न आप ?'

लेकिन इसके बाद मैं फिर कभी उनके घर नहीं गया।

नहीं मैं गलत कह रहा हूं। एक बार और गया था उनके घर। उनकी बेटी ने इल्जाम लगाया था कि सामने वाली छत का लड़का उसे लगातार घूरता रहता है। लड़के के पिताश्री मुझे भी अपने साथ वारदात की जगह पर ले गये। इंजीनियर महाशय के मकान में कहीं ऐसी कोई जगह नजर नहीं आई, जहां से खड़ा होने पर सामने वाले की छत दिखती हो। मैंने अभियोगिनी बालिका से पूछा—'कहां से घूरता है वह लड़का ?'

'अरे वाह! तो क्या मैं झूठ बोलती हूं ? आप यहां एक मेज लगाइये उस पर कुर्सी रखिये, फिर उस पर खड़े होकर रोशनदान से देखिए—बताइए, लड़का अपनी छत पर दिखता है या नहीं ?'

ऐसी होनहार कन्याओं के कारण इंजीनियर साहब लम्बे अरसे तक चर्चित पड़ोसी बने रहे। जिस दिन वे ये मुहल्ला छोड़कर गए, मैंने उपवास किया। किसी ने सांत्वना दी कि दूसरे पड़ोसी भी अच्छे ही

होंगे। लेकिन मेरा मन उदास ही रहा। आने वाले पड़ोसी अच्छे तो होंगे, लेकिन उनके पास इतनी आनन्दकारी कन्याएं भी होंगी'''इसकी क्या गारंटी है ?

अब हमारे आसपास वैसे पड़ोसी नहीं हैं। आज तो हालत यह है कि अपने पड़ोसी मकान की ओर जरा-सी ताक लेते हैं तो चारों ओर सवाल होने लगते हैं कि मेरे अगने मे तुम्हारा क्या काम है ? फिर भी, ऐसे तमाम लोग जो अनपढ़ हैं और पढ़ना-लिखना बिल्कुल नही जानते, मेरे पास पत्र लिखें। मैं उन्हें अपने वर्तमान पड़ोसियो के बारे मे गुप्त सूचनाएं दूगा।

हमारा भी ज़माना था !

कल हमारे चिरंजीव ने परिवार का पुराना अलबम देखते हुए अपनी मां से पूछा —'मम्मी, इस फोटो में तुम्हारे कंधे पर हाथ रखे यह स्मार्ट-सा नौजवान कौन है' ?

इस पर मम्मी ने उवाचा—'यह तुम्हारे पापा हैं ।'

साहबजादे को विश्वास नही हुआ—'यह पापा हैं ! तब यह कार्टून जो हमारे साथ घर मे रहता है, सो कौन है ?'

यह सुनने के बाद हम यह सोचने के लिए विवश हो गये कि प्राचीन काल की हमारी कुल जमा स्मार्टता का विनाश हो गया है । एक जमाने में हम बहुत सारे स्मार्ट लोगों से स्मार्टतर थे और कई सज्जनों के बीच स्मार्टतम भी कहे जाते थे। लेकिन अब तो वह कारवां गुज़र गया है, केवल ग़ुबार बाकी रह गया है ।

हमारा भी क्या जमाना था ! जब कभी पीछे पलटकर देखता हूं तो छत्तीस साल के शरीर में बीस साल की भावनाएं करवट बदलने लगती हैं । उस ज़माने की यादें तरोताज़ा होने लगती हैं तो सबसे पहले शहर पटना मे गुज़रे हुए दिन और रात, सुबह और शाम के तमाम सीन साकार हो जाते हैं । यह वह ज़माना था, जब हमारी शादी नही हुई थी और कालेज आने-जाने से बचे समय का सदुपयोग हम कन्या-निरीक्षण में करते थे।

अपने परम मित्र शम्भूनाथ के साथ मैं नियमित तौर पर संध्याकाल में अपने मुहल्ले से निकलता था और हथुआ मार्केट की परिक्रमा कर सधन्यवाद वापस आ जाता था। हालत यह थी कि उस मार्केट के तमाम दूकानदार बड़ी बेसब्री से हमारा इन्तज़ार करते थे, उस दिन बेचारे उदास हो जाते थे और दूसरे दिन हमसे यह निवेदन करते थे कि हे

नररत्नों ! आप चाहे इस धरती पर रहें, चाहे न रहें, लेकिन शाम के साढे पांच बजे इस मार्केट में जरूर पधारें। इसलिए हम कई वर्षों तक इस सघन कार्यक्रम मे जुटे रहे। दरअसल, केवल उस क्षेत्र की दूकानो का मुआयना करना ही हमारा एक सूत्री कार्यक्रम नहीं था। मार्केट में घूमते समय हम परायी नारियों, खासतौर पर कुमारियो का विशेष अध्ययन करते थे कि इन भारतीय ललनाओ को मां और बहन के अलावा और किन-किन नजरो से देखने की दिशा में प्रयोग हो सकते हैं।

इस क्षेत्र में हमारा अनुसंधान केवल शनिवार को बन्द रहता था। इसकी वजह यह थी कि उस दिन हमारे मुहल्ले की एक सुकन्या अपनी छोटी-बडी बहनो के साथ हनुमान मंदिर जाया करती थी। लिहाजा, शनिवार की शाम मे शम्भूनाथ और मैं, हम दोनों ही उस सुकन्या के चरण-चिन्हो पर चलते हुए मुहल्ला कदमकुआं से पटना जंक्शन के गेट पर मौजूद महावीर स्थान तक पदयात्रा करते थे। क्या जमाना था ! अब उस किस्म की पद-यात्राओ के लिए मौका ही कहां मिलता है ? उस जमाने की बालिकाओ में एक खास किस्म का कैरेक्टर था। जिस सुकन्या के पीछे-पीछे हम लोग पदयात्रा करते थे, उसके पास एक बार हम लोगों ने नितांत प्रिंसिपल हिन्दी में एक प्रेम-पत्र लिखकर खिडकी के मार्ग से भेजा। इसके जवाब स्वरूप कन्या के बड़े भाई ने हम लोगो को अत्यन्त कोमलकांत पदावली मे कई सुन्दर-सुन्दर गालियां सुनायी और भविष्य मे मारपीट करने का आश्वासन भी दिया। आजकल की हालत तो यह है कि हमारे एक एक प्रिय छात्र ने अपनी सहपाठिनी के पास एक प्रेम-पत्र भेजा, तो उस बालिका ने धारावाहिक तौर पर लगभग अस्सी खत भेज दिये, और हमारा प्रिय छात्र पत्र लिखना ही भूल गया है। सच्चाई तो यह है कि हमारे जमाने की बात ही और थी।

उस जमाने की हर चीज का अनूठा आनन्द था। रेलगाडियां अधिकतर कोयले से चलती थी, और कोयला हमारी आखो में पड़ता रहता था। उन कोयलों को हम इकट्ठा करते रहते थे, ताकि घर में अंगीठी जलाने के काम आ सकें। गैस और बिजली या डीजल से चलने

वाली रेलगाड़ियों से इस जमाने में वह मजा कहां रहा? उस जमाने में लोग अंग्रेजी में ही अंगूठा भी लगाते थे। आज भी जब कभी हमारे प्राचीन मित्र बाबूलाल मिल जाते हैं, उस जमाने की अंग्रेजी और उस जमाने की बातचीत का नमूना साकार हो जाता है।

उस जमाने में हम भी दुबले-पतले थे, एकदम स्लिम। लेकिन हमारी मित्र मंडली मे महास्लिम होने का गौरव श्रीयुत बाबूलाल को ही प्राप्त था। वे जब रिक्शे पर बैठते थे, तब रिक्शा चालक रह-रहकर पीछे ताक लेता था कि उसका पैसेंजर कहीं बीच में ही उतर तो नहीं गया? उसी जमाने मे बी० ए० करने के बाद वे एक स्कूल में शिक्षक हो गए थे। जब कभी जोर की हवा चलती थी, बेचारे बाबूलाल जी उड़कर क्लास के बाहर हो जाते थे और उनके चेले उन्हें सभालकर फिर क्लास के अन्दर करते थे। बाबूलाल जी कभी साइकिल से नहीं गिरे, और इसका रहस्य यह था कि वे कभी साइकिल पर चढ़े ही नहीं। उस जमाने के हमारे मित्रों की कथा अनन्त है। शम्भूनाथ और बाबूलाल जैसे पुरुष-पुरातन आज मोमबत्ती लेकर खोजने पर भी नहीं मिलेंगे।

उस जमाने की हर बात निराली थी। जब हम कालेज में पढ़ा करते थे, तो कक्षा का सारा माहौल परम सात्विक था। एक-से-एक महावीर शिक्षक आकर भाषण देकर हमें सुलाते थे, और हम लोग बिना किसी एतराज के शहीद होते थे। समूचे कालेज में ऐसी शांति रहती थी कि प्राचार्य महोदय के कमरे में कालबेल बजने पर भ्रम होता था कि घंटा बज रहा है। हमारे कई प्रोफेसरान इतने सीधे और मामूली ढंग से रहते थे कि अक्सर हम प्रोफेसर को चपरासी और चपरासी को प्रोफेसर समझ बैठते थे। उस जमाने में एम०ए० मे पढ़ने वाली सन्नारियां आदर्श भारतीय पत्नी के पद को प्राप्त कर चुकी होती थी और हम लोग उन्हें श्रद्धापूर्वक 'दीदी' कहते थे। आज वैसा पावन-परिवेश कहां रह गया है?

उसी पावन परिवेश में हम डूब-उतरा रहे थे कि एक दिन हमारी शादी हो गई। यार-दोस्त बधाई देने लगे कि तुम भाग्यशाली हो कि दो-

दो मालियां मिली हैं। थी तो सचमुच ही दो सालियां, लेकिन कहने भर को। आदिकाल में केवल एक ही साली, साली कहलाने काबिल थी। कालान्तर में जब तक उसका युगांत हुआ, दूसरी साली सीन पर हाजिर हो गई। आज तो आलम यह है कि दोनों ही सालियां अपने-अपने पैवेलियन में हैं और बंदा अपनी विकेट पर मजबूती से खड़ा है। अपने वैवाहिक जीवन के आरम्भिक दिनों का किस्सा फिर कभी सुनाने की कोशिश करूंगा। अभी आप यही समझ लें कि हम गुज़रे हुए जमाने की स्मृतियों से तर-बत्तर हैं।

वाह, क्या जमाना था और क्या हम थे! गांधी मैदान की मखमली घास पर बैठकर हम लोग गप्पें मारा करते थे। ऐसी-ऐसी गप्पें हांकते थे हम लोगों कि आज उन गप्पों की याद भी बेहोश कर डालती है। एक बार हमारे मित्र शम्भूनाथ ने फरमाया कि हमारे नाना का मकान इतना ऊंचा था कि एक बार एक बच्चा ऊपर से गिरा तो ज़मीन तक पहुंचते-पहुंचते वह पूरा वयस्क बन चुका था। इस पर बन्धुवर बाबूलाल ने सूचित किया कि उनके स्वर्गीय नाना जी का मकान इससे भी ऊंचा था। एक बार उस मकान की छत से कोई बन्दर फिसला और धरती पर आते-आते वह आदमी बन गया। ऐसी ऊंचे दर्जे की गप्पें मारने वाले लोग आजकल कहां मिलते हैं? खुशामद करने, पैरवी करने और पैसे कमाने से फ़ुरसत मिले, तब तो कोई जी भरकर गप्पें मारे, चाहे मक्खियां मारे।

जी हां, हमारे जमाने में कुछ ऐसे भी होनहार लोग थे जो मक्खियों और मच्छरों का वध करने की कला में नोबेल पुरस्कार के प्रत्याशी थे। हमारे मुहल्ले के पाठक जी तो इतनी होशियारी के साथ मच्छरों का संहार करते थे कि मरने के बाद भी मच्छरों की आत्मा उनकी तारीफ में वहीं भटकती रहती थी। उस किस्म के प्रतिभाशाली लोग अब कहां रह गये हैं? वह जमाना ही कुछ और था।

पिछले महीने अपनी एक सहपाठिनी महिला के साक्षात्कार का चांस लगभग सत्रह सालों के बाद मिला। आत्मा गद्गद हो गई। वही महिला

वही चाल, वही चाल। जय-जय-जय गिरिराज किशोरी, जय महेश मुखचन्द्र चकोरी। उनके पति महेश जी सड़क के उस पार चले गये थे और यह महिला दिल्ली के दरियागंज मुहल्ले में ग़लत जगह पर सड़क पार करने की कोशिश में लगी थीं। उनकी इस हरकत पर पास खड़ा सिपाही लगातार सीटी बजा रहा था। हारकर सिपाही दौड़ता हुआ उनके पास पहुंचा। तब तक मैं भी वहां पहुंच चुका था। सिपाही ने पूछा—'सीटी की आवाज़ नहीं सुनाई पड़ती ? क्या पलटकर नहीं देख सकती हैं आप ?'

इस पर श्रीमती महेश ने मेरी ओर एक नज़र फेरते हुए फरमाया—'पहले तो मैं एक ही सीटी की आवाज़ सुनकर पलट जाया करती थी, अब आदत नहीं रही।'

हमें यह सुनकर परम सन्तोष हुआ कि केवल हमारा ही ज़माना नहीं चला गया है, उन सारे लोगों का ज़माना भी अब भूतपूर्व हो गया है जो हमारे साथ-साथ अभूतपूर्व थे। आज सुबह एक मक्खी अपनी दुलारी नतिनी को, मेरे मस्तक पर टहलते हुए यह संस्मरण सुना रही थी कि कभी यहां पर एक पतली-सी पगडंडी थी और अब तो पूरा नेशनल हाइवे निर्माणाधीन है।

निश्चय ही, हमारा भी एक ज़माना था।



दिल जो न कह सका

इस वक्त मैं वह सब कुछ कहना चाहता हूं जो मेरा दिल भी मौका-ए-वारदात पर नहीं कह सका। सच तो यह है कि कहने का काम मुंह ही करता है, दिल केवल धड़कने का काम करता है। इसके बावजूद हम यह मानकर चलते हैं कि हम जो कुछ कहते हैं वह दिल के टेपरिकार्डर में रिकार्डिड बातों का ही भला या बुरा ब्राडकास्ट है। मैं इस सर्वस्वीकृत थ्योरी को नहीं मानता। बावजूद इसके कि कहने की क्रिया का सम्बन्ध भाषा-वैज्ञानिकों ने मुंह के साथ जोड़ा है, हमारा यह दिल—यह जो मन है सो लगातार कुछ-न-कुछ कहता रहता है। /

हालत यह है कि जब मुंह कुछ नहीं कहता और एकदम 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी' वाली सिचुएशन हो जाती है, तब भी दिल कहता रहता है। कभी-कभी तो स्थिति यह होती है कि मुंह और दिल के भाषण एक साथ अलग-अलग हाईवे पर दौड़ते नज़र आते हैं। लिहाज़ा दिल के कुछ नहीं कहने का सवाल ही नहीं है। दिल की सबसे वैज्ञानिक परिभाषा ही यही है कि दिल वह है जो मुंह से न कहे गये अमर वाक्यों का बयान करे और ज़बान पर न लाई गई गुप्त भावनाओं की सप्रसंग व्याख्या करे।

विज्ञान ऐसा कोई आविष्कार नहीं कर रहा है जिसकी सहायता से दिल की बातें सुनी जा सकें। हम जब कोई काम करते रहते हैं या किसी के साथ वार्तालाप में व्यस्त रहते हैं, तब दिल की भाषण की ट्रेन स्टेशन-दर-स्टेशन पार करती है। दिल के इन व्याख्यानों को ज़बान पर लाने का साहस आज मैं कर रहा हूं। ईश्वर मेरी और मेरे दिल की रक्षा करे।

दिल से बेहतर हाज़िरजवाबी की कल्पना नहीं की जा सकती। कुछ

भी देखकर कुछ भी सुनकर दिल तत्काल अपना कमेन्ट दे डालता है। दिल की कमेन्ट्री को सुनना मनोरंजक भी है और जोखिम भरा भी। दिल की बातों को सुनने की लगातार कोशिशें मैंने की हैं और हर बार मजापूर्ण मजा मिला है।

आइए, सबसे पहले मैं अपने सुखी दाम्पत्य जीवन में दिल की कमेन्ट्री के कारनामो से अपना परिचय कराऊं। मेरी पत्नी और चाय दोनो सुबह एक साथ उबलना शुरू कर देते हैं। लिहाजा पहले सुबह दिल का समानान्तर भाषण शुरू हो जाता है। चाय के प्याले की चंद चुस्कियां लेते हुए मैं चाय की तारीफ करता हूं—'वाह, क्या फलेवर की चाय है। वाह, एकदम फर्स्ट क्लास।'

इस वाह-वाह के समानान्तर मेरा दिल एक लम्बा भाषण देता रहता है—'धुत, ऐसी भी चाय होती है? अच्छी से अच्छी चाय खरीदी जाय, यह औरत सारा टेस्ट बर्बाद कर देती है।'

और, फिर दिल की कमेन्ट्री सारे दिन चलती रहती है। परसों शाम से ही पत्नी के साथ मेरा अबोला चल रहा है। कल वे मायके गई और उनका पत्र भी आया है। अब पूरे समाचार सुनिए। किस्सा यह कि परसों हम लोग पड़ोस के मोहल्ले में एक ज्योतिषी के पास गए थे। उक्त ज्योतिषी ने फरमाया कि तुम्हें अत्यन्त धनी पिता की इकलौती सुन्दर लड़की पत्नी के रूप में मिलेगी।

यह सुनकर मैं गद्‌गद हो उठा—'वाह, यह तो बड़ी अच्छी बात है, लेकिन मेरी एक अदद बीवी और चार अदद बच्चों का आगे कौन हवाल होगा?'

यह सुनकर ज्योतिषी के दिल ने क्या कहा सो तो इधर रिले नही हुआ लेकिन मेरा दिल अफसोस करने लगा कि इस होनहार ज्योतिषी से मिलने से दस साल पहले मैंने शादी क्यों कर ली? इधर मेरा दिल... अफसोस रस की मूसलाधार बारिश करता रहा और उधर हमारी ... का दिल गुस्से की आंच मे गरम होता रहा। घर पहुंचकर ... ने बहुत दिनो के बाद बर्तन फेंकने की कला का कुशल प्रदर्शन

किया। इधर वे कटोरी फेंकती थी और मैं होशियारी से बायीं ओर झुक जाता था। कोई बड़े साइज का चम्मच आता दिखता तो मैं उतनी ही विनम्रता के साथ दायीं ओर झुक जाता था। अपनी-अपनी पोजीशन पर दोनों खुश थे। जब उनका निशाना सही लगता तो वे खुश हो जाती थीं और उनका निशाना चूकने पर हमेशा की तरह मैं खुश होता था। लगभग बीस मिनटीय बर्तन-प्रयोग के बाद सीज फायर हो गया।

फिर हम दोनों ने एक-दूसरे से बोलना बन्द कर दिया। इसके बावजूद हमारे दिलों की डायलागबाजी बन्द नहीं हुई। इन दोनों के बीच में कैसा ये बन्धन अनजाना था कि न मैंने जाना और न गृहलक्ष्मी ने जाना। बिना कुछ बोले वे रात का खाना मेरे सामने रख गईं। उनके दिल ने हुक्म दिया—'मुंह फुलाये क्या बैठे हो, चुपचाप खा लो और अच्छे बच्चे की तरह जाकर अपने बिस्तर पर लेट जाओ।'

हमने इस आदेश का तत्काल पालन किया। मेरे शरीर ने बिस्तर पर पसरना शुरू किया था कि दिल बोलने लगा—'सो रहे हो मिस्टर! सवेरे वाली गाड़ी से जाना है कि नहीं ? कौन जगाएगा तुम्हें ?'

दिल का यह सवाल सुनकर मैंने उठकर पत्नी के नाम एक पत्र लिखा—'कल सवेरे पांच बजे मुझे जगा देना, सवेरे गाड़ी पकड़नी है।'

सुबह जब आठ बजे नींद खुली तब तक ट्रेन जा चुकी थी और मेरे तकिये के पास मेरी पत्नी का सन्देश रखा हुआ था—'पांच बज गए, उठ जाओ।'

आगे समाचार यह है कि बच्चे अपनी मां के साथ अपने नाना के यहां चले गये हैं। आज मेरी डाक में एक पोस्टकार्ड आया है। यह मेरी पत्नी का पत्र है, आजकल अबोला जो चल रहा है। इसी कारण यह योग मिला है कि यह सब कुछ आपसे कह दूं जो दिल अन्दर-ही-अन्दर कहता रहा है, सुनकर पेश नहीं कर सका है।

अपनी पत्नी के साथ बाजार में घूमते समय मेरा दिल लगातार मुखर रहता है। कपड़ों की एक दुकान के बाहर बोर्ड लगा था 'जो

महिलाए दस मिनट मे साड़ी पसन्द करेंगी उन्हें मैचिंग ब्लाउज़ पीस फ्री मिलेगा।'

निश्चय ही यह घोषणा दूकानदार के दिल की निरन्तर प्रतिध्वनियो का परिणाम थी। इस दूकान मे प्रविष्ट होकर श्रीमती ने साड़ियों का सूक्ष्म निरीक्षण प्रारम्भ किया और मैं वही साइड मे चुपचाप मूकदर्शक बना हुआ था। उधर वे निर्ममता के साथ साड़ियों की शैली वैज्ञानिक समीक्षा कर रही थी और इधर मेरा दिल बोलता जा रहा था 'अरे ! साड़ी खरीदनी है तो झट से ले लो एक। यह क्या इन्सानियत हुई कि दूकानदार बेचारा एक के बाद एक साड़ियों के पहाड़ बनाता जा रहा है और आपका अभियान खत्म नही हो रहा है। मैं तो अब तक समूचा बाज़ार खरीद चुका होता।'

दूकानदार मेरे दिल की आवाज नही सुन रहा था वरना इस हमदर्दी पर मुझे गले लगा लेता। उसने हमसे पूछा 'कहिये साहब ! आपकी सेवा में क्या पेश करूं ?'

मैंने कहा, 'बस, एक रूमाल पसीना पोंछने के लिए।'

रूमाल खरीदकर मैंने दूकानदार को ही सादर समर्पित कर दिया, जो मेरी पत्नी को साड़ियां दिखा-दिखाकर तरबतर हो रहा था। पत्नी को वही साड़ियों के हवाले छोड़कर मैं सामने चला गया। वहा दूरबीन देखने लगा। एक दूरबीन की तारीफ करते हुए दूकानदार ने बताया कि इस दूरबीन से देखें तो चार किलोमीटर दूर खड़ी खूबसूरत लड़की को भी अच्छी तरह देख सकते है। मेरी आंखें दूरबीन मे घुसकर चार किलो- मीटर दूर तलाशने लगी और दिल ने फरमाया कि जो लड़की इतनी दूर खड़ी है, उससे क्या फायदा ?

दिल के समझाने पर मैं दुबारा साड़ियों की दूकान पर पहुंच गया जहां एक घंटे के अनुसंधान के बाद भी मेरी पत्नी एक साड़ी पसन्द नही कर पाई थी। बेचारा दूकानदार बेहद शर्मिन्दा था और अपनी सज्जनता- वश हमसे नजरें नही मिला रहा था। जरूर उसका दिल हमें नितान्त सभ्य और शालीन किस्म की गालियां सुना रहा होगा—कम-से-कम उसके चेहरे पर ऐसे ही सुहाने भाव थे।

इधर मैंने अपने दिल की आवाज़ के साथ दूसरों के दिल की आवाज़ को सुनने का अभ्यास भी किया है। चूंकि मैं एक आदर्श पति होने के साथ-साथ एक प्राध्यापक भी हूं, कक्षा में बोलते समय दिल की आवाज़ों की टकराहटें सुनता-समझता रहता हूं। जी हां, बड़ा मज़ा आता है। मेरे मुंह से *हिन्दी उपन्यास के विकास की 'बलिग ट्रेन'* फुल स्पीड में छूटती है, उसके समानांतर नज़रें सामने बैठे शताधिक छात्र-छात्राओं का मुआयना करती हैं और उसके समानान्तर दिल की कमेण्ट्री चलती रहती है—

वाह, आज पुष्पा दास गुलाबी साड़ी पहनकर आई और रचना पांडेय को तो देखो, इस उमर में भी दो चोटियां कर चली आई हैं। यह सुनील सहाय इस तरह मेरी ओर क्यों देख रहा है? वह निवेदिता गुप्ता बहुत उदास लग रही है और उसके पीछे बैठी ममता सिन्हा कितनी खुश है। क्यों नहीं खुश होगी, शादी जो तय हो गई है। लेकिन इसमें खुशी की क्या बात है। उस परमेश्वर सिंह की शादी पिछले साल हुई थी, अभी थोबड़ा लटकाए बैठा है।

कभी-कभी दिल वह सब भी बोलने लगता है जो सामने नहीं है। प्रेमचंद की प्रासंगिकता पर व्याख्यान देते समय दिल कभी घर में चीनी के अभाव पर चिन्ता व्यक्त करता है, तो कभी अगले महीने होने वाली कलकत्ता-यात्रा की प्लानिंग करता है। लेकिन क्लास रूम में अकेले शिक्षक का दिल ही नहीं बोलता है, सीन पर मौजूद तमाम दिल वालों और दिल वालियों के दिल भी अपनी-अपनी भाषा में अपनी-अपनी बात कहते हैं। एक बार हिन्दी गद्य के विकास पर अपना भाषण खत्म करने के बाद मैंने सामने बैठी नई पीढ़ी से कहा कि उनके मन में कोई शंका हो तो पूछ लें। इस पर एक छात्रा खड़ी हुई और उसने प्रश्न किया—

'आपके स्वेटर का यह डिज़ाइन आपकी पत्नी ने कहां से लिया है?' यानी उस ज्ञान-पिपासु बाला का दिल मेरे भाषण के दौरान स्वेटर की बुनावट में उलझा हुआ था। शायद किसी का दिल मेरे सिर से गायब होने वाले बालों पर रिसर्च कर रहा हो या किसी का दिल महिला

कालेज के सेकण्ड ईयर में पढने वाली अपनी प्रेमिका के आसपास चक्कर काट रहा हो। दिल की गाथा अनन्त है। दिल जो कहता है, वह भी असीम है। आप कोई महत्वपूर्ण काम करने के मूड में हों कोई आपके समय का वध करने प्रकट हो जाये तो आप अत्यन्त महत्वपूर्वक कहेंगे, 'आइए-आइए ! अजी आजकल तो आप नज़र ही नहीं आते, एकदम दूज के चांद बने हुए है । आज इधर कैसे भूल पड़े ?'

इन स्वागत वचनो के समानान्तर दिल का स्वगत-कथन भी चलने लगता है—आ गया मरदूद ऐन काम के समय ! अब आधे घंटे से कम में नहीं टलेगा मनहूस । दिल जो कुछ जबान पर नही ला सका वह सब दिल-ही-दिल मे बयान को समझने का व्यापक अभ्यास किया है मैंने । तब जाकर वह सब बतला पाया हू जो दिल नही बतला सका । मैं नये प्रयोग करता हूं । लिहाज़ा अब और दिल के बयान नही सुनाऊंगा । अपनी तो जैसे-तैसे, थोड़ी ऐसे या वैसे कट जाएगी, लेकिन जनावेआली ! आप यह बताइये कि आपका क्या होगा ?

बस, अब बस !

बस मे सवार होना और उसमे सफर करना एक कला है, जिसे हिन्दुस्तानी जनता के सिवा सारे संसार में और कोई नही जानता। दिल्ली, कलकत्ता और बम्बई जैसे महानगरो मे बस स्टैण्डो पर लोग जिस बेचैनी और तन्मयता के साथ बस का इंतजार करते हैं, वह उत्सुकता संसार के किसी भी प्राणी को लज्जित कर देने के लिए काफी है। रूस और अमेरिका ने भी अभी तक बसों के मामले मे ऐसा विकास नहीं किया है कि इन्सान बस के अन्दर ही नहीं, बस के ऊपर भी सफर करे। इसी कारण मंगल और शुक्र ग्रहो के निवासी भी वक्त-बे-वक्त भारतीय बसो का मुआयना करने पधारते रहते हैं और यह देखकर परम आनंदित होते हैं कि इन बसो मे हार्न के सिवा सब कुछ बजता है और इन बसों मे आदमियों को भेड़-बकरियों की तरह सफर करना पड़ता है। और इन बसो मे रात मे वीडियो दिखाने की व्यवस्था रहती है, जबकि अधिकांश बसें दिन मे तारे दिखाने का उत्तम प्रबन्ध रखती हैं।

एक दिन दैनिक समाचार-पत्र ने सुबह बताया मेरी राशि के सभी महामानवों को आज वाहन-सुख उपलब्ध होगा। दैनिक भविष्य फल के इस आश्वासन के बाद ही मैंने रांची से चाईबासा की अपनी बस-यात्रा का कार्यक्रम बनाया। बस की यात्रा का वैज्ञानिक तरीका यह है कि आदमी सीधा बस स्टैण्ड पर जा पहुंचे और अपने भाग्य के अनुरूप बस पर सवार हो जाय। लिहाजा मैं पहले उस पवित्र स्थान पर पहुंचा, जिसे शास्त्रो में बस स्टैण्ड कहा गया है। क्या शोभा थी, वाह ! पहली नजर में तो पहचान ही न सका कि बस स्टैण्ड है या गंगासागर का दलदल। एकदम वाचालों को मूक बना देने और चलने वालो को पंगु बना देने वाला सीन था। उस कीचड़पूर्ण छप्परविहीन स्टैण्ड में बसों के पास

पहुंच जाना साधारण पुरुषों के वश की बात नही थी। चिलचिलाती धूप मे गर्द और कीचड़ से अपने आपको साफ बचाते हुए जो कुछ भाग्यशाली लोग बस स्टैण्ड के बीचों-बीच विराजमान हो सके, उनमें से एक मैं भी था। चाईबासा जाने वाली चटख हरे रंग की बस के बगैर टूटे शीशे वाली खिड़कियों और नर्म मुलायम गद्देदार सीटों को देखकर मन प्रसन्न हो गया। तिस पर बस के खलासी ने इतने आग्रह के साथ पुकारा कि उतने प्रेम से तो मेरी पत्नी ने भी आज तक नही बुलाया है। कच्चे धागे से बंधे हम जाकर बस मे बैठ गए, क्योंकि बकौल खलासी के बस खुलने ही वाली थी। बस लगभग सवा घंटे बाद खुली, तब तक मेरे साथ हाथ का अखबार समूची बस मे एक सीट से दूसरी सीट तक हस्त-यात्रा करता रहा। बस खुली तो सभी यात्रियो ने इस मंगल वेला में एक-दूसरे को बधाई दी।

बस दनदनाती हुई दौड़ती रही। अचानक बस यात्रियों के बीच शोर मच गया कि बस गलत रास्ते पर जा रही है। ड्राइवर महाशय मुश्किल से कुमार्ग पर चल रही बस को सही रास्ते पर ले आये और इसके बाद बस ने रास्ता भूलने की भूल नही की। सौभाग्यवश यह उन कचरा और खटारा बसों में से नहीं थी, जिनका हर पुर्जा असहयोग आंदोलन करता रहता है। इस बस का ड्राइवर जब हार्न बजाता था, तब केवल हार्न बजता था। वरना कई बसों में तो हार्न बजाने पर एक साथ कई कल-पुर्जों का कोरस सुनाई पड़ता है। रांची मे ही ओवरब्रिज पार करते-करते उसने इस शहर के नागरिकों और बस के यात्रियो के हार्नवादन का ऐसा सुमधुर कार्यक्रम पेश किया कि मन क्विंटल हो गया। यह खूंटी जाकर पता चला कि इस महामानव को अखिल भारतीय हार्न बजावन प्रतियोगिता में कई बार गोल्ड मैडल मिल चुका है। समूची यात्रा में उसकी हार्न कला के नमूने सुनने पड़े। इस बस में एक अदद टेपरिकार्डर भी लगा था, जिसमें कैसेट फिट करने का महान कार्य भी ड्राइवर ही करता था। लिहाजा हर तीस मिनट के बाद यह संगीत-रसिक बस को रोककर कैसेट बदलता था और गीत समानान्तर अपनी

हार्नकला पेश करता था। हालत यह हो गई कि आखिर में हम सब यात्रियों ने उनसे संयुक्त निवेदन किया कि हे दोनों के नाथ ! आप कैसेट रूपी माया को छोड़कर केवल हार्न रूपी यथार्थ पर ध्यान दें। इसके बाद हमें केवल हार्न ही हार्न सुनाई पड़ा। किसी तरह बस खूटी पहुंची और वहां आधे घंटे तक टंगे रहने के बाद आगे की यात्रा पर निकली। मुरहू नामक गांव में प्रवेश से पहले ही एक जोरदार आवाज के साथ बस का कोई टायर फट गया। हमारे ड्राइवर, कंडक्टर, खलासी सभी बस का मुआयना करने उतर पड़े। समूची बस की तीन-चार बार परिक्रमा करने के बाद उन्होंने यह शोध निष्कर्ष प्रस्तुत किया कि दाहिनी ओर का पिछला चक्का पंचर हुआ है। हम सबको बीस मिनट का आकस्मिक अवकाश प्रदान किया गया कि हम मुरहू बस स्टैण्ड पर उपलब्ध खाद्य सामग्री का सेवन खाद्य सामग्री के रूप में कर सकते हैं। वहां मौजूद मिठाइयां बड़ी बहादुरी के साथ मक्खी, धूल और अन्य कीड़े-मकोड़े के साथ जूझ रही थी। चाय की शक्ल देखकर संदेह अलंकार उत्पन्न हो जाता था कि चाय बीच पानी है कि चाय का ही पानी है कि पानी की ही चाय है। लगभग आधे घंटे के बाद जब हम अपनी प्यारी बस के पास गए, तो बस के सभी कर्मचारियों का समूह इस सामयिक विषय पर चिंतन-मनन करता हुआ पाया गया कि स्टेपनी का सदुपयोग किया जाय अथवा नहीं ? यात्रियों के विशेष अनुरोध पर उन कलाकारों ने पंचर टायर की जगह स्टेपनी को लगाया और बस एक बार फिर चलने के लिए तैयार हो गई। लेकिन, चल नहीं सकी, ड्राइवरादि अपने कठिन परिश्रम के बाद चाय पीने लगे। लगभग एक घंटे के मुरहू प्रवास के बाद बस को चाईबासा की ओर आगे बढ़ने का चांस मिला।

बस ने पहाड़ी मार्ग पर चढ़ना शुरू किया तो अनेक सज्जनों और सज्जनियों ने उल्टी की सम्भावना व्यक्त की। उल्टी आने की स्थिति में क्या करना चाहिए—इस महत्वपूर्ण विषय पर विभिन्न वक्ताओं ने अपने विचार व्यक्त किए। इसके पहले कि इस विषय पर यह गोष्ठी एक सेमिनार का रूप धारण कर लेती, बिना किसी पूर्वसूचना के एक लड़के

ने अपना सारा खाया-पीया आसपास बैठे लोगों के ऊपर निकाल दिया। इस घटना के बाद जैसे उल्टी का बांध टूट गया हो, एक के बाद एक आठ-दस यात्री उल्टी कर बैठे, चारो ओर गदगी की ऐसी छटा छा गई कि बेचारा ड्राइवर हार्न बजाना भूल गया। उसने किसी कुत्ते के सुपुत्र को बचाने के लिए ऐसा जोरदार ब्रेक लगाया कि समूची बस मे जैसे जलजला आ गया। जो खड़े थे, वे खड़े रह गए और जो बैठे थे, बैठ गए। बस के रुकने का सुपरिणाम यह हुआ कि पास के गाव की जो सन्नारियां बन्द गांव के साप्ताहिक हाट में पदयात्रा करती हुई जा रही थीं, वे सहसा आचार्य विनोवा भावे के सिद्धांत को भूलकर तकनीकी सभ्यता पर विश्वास करने लगी। वे सब की सब बस पर आरूढ़ हो गई। इसके बाद तो बेचारे ड्राइवर और कंडक्टर ने हर गांव की हर महिला को बस यात्रा का सम्मान दिया। सच्चाई यह थी कि नारियों को बस के अन्दर और पुरुषों को बस की छत पर स्थापित किया जा रहा था। बस सब ओर से महामानव समुद्र हो गई थी। कई लोग बस की बोनट पर बैठे थे और बस में खड़े लोगों की संख्या की गिनती नही की जा सकती थी। हालत यह हो गई कि जब एक सज्जन को कहीं जगह नहीं मिली तो कृपासागर ड्राइवर ने उन्हें अपने कंधे पर बैठा लिया। बहुत पहले मैंने एक सरकस में शेर को एक छोटे से स्टूल पर बैठा हुआ देखा था। इससे भी बड़ा करिश्मा बस में यह नजर आया कि बावन सीटों वाली बस पर कम-से-कम पौने दो सौ लोग सवार थे। बस की अगली सीट से पिछली सीट के बीच में कम-से-कम पचास महिलाएं खड़ी थी और लगभग चालीस लोग छत पर लदे हुए थे। हर क़दम पर बस के उलटने की महादशा उत्पन्न हो रही थी, लेकिन ड्राइवर और कंडक्टर नही चाहते थे कि आम जनता को बस यात्रा के उनके मौलिक अधिकार से वंचित रखा जाय। इसीलिए बस हर हिन्दुस्तानी के स्वागत में रुकती हुई बढ़ रही थी।

बसों को पहाड़ से टकराने, नदी में तैराने, खाई मे छलांग लगाने, पैदल जनता को कुचलने आदि महान साहसिक कार्यों में सक्रिय बनाने में

ड्राइवर और कंडक्टर दोनों का सुन्दर योगदान रहता है। बन्द गांव के बाद पहाड़ी घाटी के हर मोड़ पर बस का अन्त ही नज़र आता था, लेकिन न मालूम किसके पुण्य प्रताप से बस घाटी से साफ उतर गई और समतल रास्ते पर चलने लगी। इस समय तक बस पर सवार यात्रियों के स्पष्टत: दो दल विभाजित हो गए थे और दोनों दलों के घोषणा-पत्र भी जारी हो चुके थे। एक दल मे मेरे जैसे सीटासीन लोग थे, जो रांची से चाईबासा तक की सीधी यात्रा का टिकट कटाकर बैठे थे। दूसरे दल में अनन्तिम लोकल नर-नारियो का समूह था, जो बन्दगांव से टेबो, टेबो से कराईकेला, कराईकेला से चक्रधरपुर, चक्रधरपुर से खूटपानी जैसी लघु यात्राओ के लिए ही बस पर सवार थे। इन सारे लोकल यात्रियों की खूबसूरती यह थी कि इन्हें ड्राइवर और कंडक्टर का असीम स्नेह प्राप्त था। इसकी वजह यह थी कि इन लोगो ने टिकट नही लिया था और कंडक्टर-खलासी को नकद किराया देकर प्रसन्न कर दिया था। खलासी मे यह महान प्रतिभा छिपी हुई थी कि वह हर बीस मिनट बाद चलती बस में छत के ऊपर जाकर यात्रियों से पैसे वसूल लाता था। बस मे जनता इस कदर भर गई थी कि गर्मी और शोर के चलते बहुत सारे वीर पुरुषो के भी छक्के छूट गये। मैं जहां बैठा था, उनके सामने की सीट पर बैठे सज्जन ने मुखडा खिड़की से निकालकर पान की पीक इस कलाकारी से बाहर फेंकी कि सारी लालिमा वापस बस के भीतर पसर गई। चन्द छीटे हमारे कपडो पर भी आ लगे। यह देखकर हमने बस की खिड़की बन्द करने की विफल चेष्टा शुरू की। खिड़की तो बन्द नही हुई, लेकिन इस संघर्ष के फलस्वरूप हमारी कई उंगलियां जरूरत से ज्यादा लहू-लुहान हो गई। कभी हम अपने आपको देखते थे, कभी बस को देखते थे और कभी बस पर सवार लोगो को देखते थे कि सहमा बस थम गई। सभी लोग उतरने लगे, तब मालूम हुआ कि बस की टंकी का पेट्रोल खत्म हो गया है। अब बस को ठेलकर किसी तरह चक्रधरपुर तक पहुंचाया जाय, ताकि बस अपनी बची-खुची यात्रा पूरी कर सके। कहना न होगा कि इस पुनीत यज्ञ मे सबको हिस्सा लेना पड़ा।

चक्रधरपुर मे पेट्रोल पीने और आधे घंटे तक विश्राम करने के बाद

बस एक बार फिर चल पड़ी। इस बार बस ने रास्ते के हर गाव के सामने रुकने का नियम बना लिया। इस बस में सफर करना विश्व-युद्ध मे लड़ने से अधिक बहादुरी और बुद्धि का परिचायक था। इसीलिए मेरे अधिकांश सहयात्रियों को चाईबासा पहुंचते-पहुंचते दिन मे तारे नज़र आने लगे। बस चाईबासा पधारी तो संतोष हुआ कि जान बची और लाखो पाए, लौट के बम से घर को आए।



एक हैं के० डी०

एम० ए० का रिजल्ट निकला तो के० डी० वही थे, जहां उन्हें होना चाहिए था। प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान उन्हें इसलिए नही मिला कि एम०ए० का रिजल्ट निकला तो के०डी० वहीं थे, जहां उन्हें होना चाहिए था। प्रथम श्रेणी मे प्रथम स्थान उन्हें इसलिए नही मिला कि उनके बैंच की एक परम सुन्दरी कन्या सहसा आचार्य को अच्छी लगने लगी। के०डी० ने गोटी लाल कर ली थी, लेकिन कन्या उनका चांस खा गई। बेचारे के० डी० को तृतीय श्रेणी इसलिए नही मिली कि युनिवर्सिटी ने थर्ड क्लास का सिस्टम ही खत्म कर दिया। सो, के० डी० को द्वितीय श्रेणी मे 36वा स्थान मिला। अत्युत्तम होते हुए भी यह परीक्षाफल के० डी० की प्रतिभा का सही मूल्याकन नही करता है। उनकी प्रतिभा और क्षमता ठीक वैसी ही स्थिति उत्पन्न करती है, जिसका सामना न कर पाने पर तुलसीदास ने बार-बार अपने काव्य मे शेष और शारदा का सहारा लिया है।

हिन्दी साहित्य को विषय मानकर एम०ए० करने वाले हर प्राणी का यह परम पावन धर्म है कि एम० ए० कर लेने के बाद वह पी-एच० डी० भी करे। हालत यह है कि छात्रगण एम०ए० करते ही घास खोदना शुरू कर देते हैं। घास खोदने की इसी परम्परा को अंग्रेजी में रिसर्च और प्रकारान्तर से पी-एच० डी० कहा जाता है। के० डी० रिसर्च के अनुकूल जल और वायु का संधान शुरू में ही कर चुके थे। इसलिए एम० ए० का रिजल्ट निकलते ही आचार्य के निवास पर जा पहुंचे। आचार्य के अहाते मे लगभग पचास और भी रिसर्चोत्सुक सज्जन उपस्थित थे। के०डी० भी उसी भीड मे मिल गए। लगभग एक घटे की प्रतीक्षा के बाद आचार्य ने बरामदे में आकर दर्शन दिए। उन्हें देखते ही सारे-के-

सारे शोधकर्ता सीढ़ियों से अहाते तक साष्टांग की मुद्रा में लेट गए। यह दृश्य देखकर आचार्य धीरे से मुस्कुराए और बोले—'क्या चाहिए तुम लोगों को ?'

कोरस स्वर गूंजा—'पी-एच०डी० महोदय। पी-एच०डी० महोदय। पी-एच०डी० ।'

आचार्य ने तथास्तु की मुद्रा में सिर हिलाया। तब एक सज्जन ने हाथ उठाकर कहा—'महोदय मैं डी०लिट्० होना चाहता हू।'

उत्तर मिला—'ठीक है, तुम रामचरितमानस को टाइप करवाकर, अच्छी जिल्द चढ़ाकर विश्वविद्यालय में जमा कर दो, दीक्षांत-समारोह के अवसर पर आकर डी० लिट्० की डिग्री ले जाना।'

धीरे-धीरे भीड़ छंटने लगी और अन्त में सीन पर के० डी० अकेले रह गए। आचार्य ने पूछा—'क्यों के०डी० ! कल बिजली का बिल जमा हो गया ? और हा, आज उस शर्मा के बच्चे ने क्या नाश्ता किया है ? बोलो, रिपोर्ट दो।'

के० डी० ने रिपोर्ट दी—'बिजली का बिल तो कल ही जमा कर दिया। शर्मा ने आज सवेरे तीन मूली के परांठे खाए हैं और उसके साथ चाय पी। दिन में उनके यहां खिचड़ी बन रही है, शनिवार है न ?'

आचार्य खुश हो गए। बोले—'तुम बहुत मेधावी हो।'

के० डी० ने रोनी सूरत बनाकर निवेदन किया—'आप सारे संसार के बीच पी-एच० डी० और डी०लिट्० का दान कर रहे हैं। नाथ, किस कारण आपने मुझे बिसार दिया है। मैं भी रिसर्च करना चाहता हूं।'

के० डी० का रोना सुनकर आचार्य का मन पिघलने लगा। उन्होंने पुचकारते हुए कहा—'इसमें दुःखी होने की क्या बात है ? तुम भी रिसर्च करो। पहले कोई मनपसन्द विषय खोज लो। रिसर्च की रूपरेखा बनाओ और कर लो पी-एच० डी०।'

के० डी० का मन सन्तुष्ट हो गया। उन्होंने झुककर आचार्य की चरणधूलि ली और सीन से हट गए।

यह तथ्य तो दैवो न जानाति कि के० डी० के साथ आचार्य की

पहली मुलाकात किन ऐतिहासिक घड़ियों में हुई थी। लेकिन मानना पड़ेगा कि इस बार आचार्य ने बड़े परिश्रम के साथ के० डी० जैसे आदर्श रिसर्च-फेलो का संधान किया है। न मालूम, किस गली के कोने से उन्होंने के०डी० को खोज निकाला है। पिछले कुछ महीनों में ही के०डी० ने अपनी बुद्धि और क्षमता का ऐसा परिचय दिया है कि विश्वविद्यालय के हिन्दीतर विभागों के रिसर्च-फेलोगण लज्जा के मारे जल-जल हो गए हैं। के० डी० की प्रतिभा अद्भुत है। हिन्दी-विभाग में अब तक ऐसा रिसर्च-फेलो नहीं प्रकट हुआ था, जो इतनी तत्परता के साथ विभाग की सेवा करे, एक सांस में सारा बाजार-भाव सुना दे और डेढ़ मन तक का बोझ हंसते-हंसते आचार्य प्रवर के निवास तक पहुंचा सके। इस दिशा में के० डी० का कौशल बेमिसाल है। वह रिसर्च-फेलो होकर भी रिसर्च-फेलो के सिवा बाकी सब हैं और यही के० डी० की विशेषता है। हिन्दी विभाग में ऐसे मूढ़ रिसर्च-फेलोजनों की सुदीर्घ परम्परा रही है, जो आलमारियों और पुस्तकों के बीच बोर होते रहे। ऐसे भी रिसर्च-फेलो हो गए हैं, जो आजीवन रिसर्च तो नहीं ही कर सके, इतर दिशाओं में भी अपनी प्रतिभा नहीं दिखा सके। कुछ ऐसे शोधकर्ता भी पाए गए हैं, जो स्कॉलरशिप के अधीश को अपनी भक्ति के नवनीत में लपेटकर आचार्य को समर्पित करते रहे और चैन की बंसी बजाते रहे। के० डी० इतनी घटिया दर्जे की फेलोशिप नहीं निबाहते हैं। वे रिसर्च भी करते हैं और स्कॉलरशिप भी पूरी भोगते हैं। यू० जी० सी० की निगाह में वे प्रेमचन्द के जूतों पर शोध कर रहे हैं, लेकिन सारा शहर जानता है कि के० डी० बाजार-भाव की रिसर्च करते हैं। किस दूकान की जलेबियां सबसे अधिक स्वादिष्ट होती हैं, यह किसी हलवाई से नहीं, के० डी० से पूछिये आपको बतलाएंगे कि कहां की जलेबियां बासी मैदा से बनती हैं, किस दूकान की जलेबियों में करारापन नहीं रहता और कौन हलवाई गुड़ की जलेबियां बनाता है। अब तो हालत यह है कि हम लोग बिना के० डी० से सूचनाएं लिए बाजार जाने या चीजें खरीदने की हिमाकत नहीं कर सकते।

के० डी० की विशेषता यह नहीं कि वे यू० जी० सी० के रिसर्च-फेलो

हैं, बल्कि यह है कि उन्हें शहर भर का बाजार-भाव कण्ठाग्र है। दूर-दूर से लोग उनके पास बाजार-भाव और जरूरत की चीजों के पते पूछने आया करते है। हिन्दी-विभाग में दिन भर में कम-से-कम एक सौ तीस ऐसे फोन तो आते ही होंगे, जिनका जवाब के० डी० को देना पड़ता है। मजे की बात यह है कि सूचनाएं कभी ग़लत नही होतीं। आज तक सिर्फ एक बार यह दुर्घटना हुई है कि के० डी० ने ग़लत दूकान का भाव बता दिया। पूछने वाले ने महावीर भण्डार की पिसी हुई हल्दी की कीमत पूछी और महाव्यस्त के० डी० ने बजरंग स्टोर्स का भाव जल्दी मे बता दिया। इस कारण वेचारे जिज्ञासु को दुबारा फोन करना पड़ा। अन्यथा, इस मामले में के० डी० बेमिसाल हैं।

दरअसल, के० डी० व्यक्ति नही, संस्था हैं। मैंने लक्ष्य किया है कि हिन्दी विभाग के हर आयोजन का गुरुतर प्रबन्ध-भार उन्होने अकेले ही वहन किया है। किस हाल में आयोजन होगा, किस टैक्सी पर अतिथि आएंगे, किस मैदान मे फोटोग्राफी होगी, कहां से मालाएं आएंगी और कहा से नाश्ते का माल आयेगा—इन सबकी चिन्ता अकेले के० डी० करते हैं। आचार्य के० डी० को काम सौपकर वैसे ही निश्चिन्त हो जाते हैं, जैसे त्रेता युग मे राम अपनी अंगूठी हनुमान को सौपकर निश्चिन्त हो गये थे। हालत यह है कि आचार्य केवल खाते, सोते और नित्य कर्म करते हैं—उनके शेष कार्य के० डी० के जिम्मे हैं। इसी कारण के० डी० का ब्रीफकेस सदा आचार्य के चमचों और विरोधियों की दैनिक डायरी, बिजली और टेलीफोन के बिल, विभाग को मिलने वाले ग्राण्ट के काले और उजले हिसाब, किराना सामानों की लिस्ट और ऐसी ही अन्य अनिवार्य वस्तुओं से भरा रहता है। ब्रीफकेस उनका गुप्त धन है। के० डी० जान दे सकते हैं, ब्रीफकेस नही। कुछ जानकारों का तो यहां तक कहना है कि वे पत्नी के साथ बिताये गये नितांत गोपनीय प्रसंगों में भी ब्रीफकेस की संगति नही छोड़ते हैं। इतना जगजाहिर है कि ब्रीफकेस के० डी० के बहुमुखी व्यक्तित्व का एक अंग है। अधिकतर ब्रीफकेस और के० डी० को एक साथ देखकर मूर्खजन यह विभेद नहीं कर पाते कि

इनमें के० डी० कौन है और ग्रीफकेस कौन हैं। उनकी सुविधा के लिए इतना बता देना जरूरी है कि जो लटका हुआ है वह ग्रीफकेस है और जो लटका रहा है, वह के० डी० हैं। जिस समय के० डी० आचार्य के साथ चलते हैं, उस समय का परम आल्हादकारी दृश्य देखकर श्रद्धालुओं का मन झूमने लगता है। के० डी० आचार्य से लटके हुए शोभायमान होते हैं और ग्रीफकेस के० डी० के साथ लटका रहता है।

एक दिन के० डी० सब्जी-बाजार में मिले। वे बड़ी तन्मयता के साथ आलुओं पर रिसर्च कर रहे थे और अब ललाट पर उभर आए श्वेत बिन्दुओं को पोंछ रहे थे।

मैंने पूछा, 'क्या हो रहा है के० डी० महाशय?'

वे बोले,'आलू खरीदा जा रहा है। आचार्य-श्री के डेरे पर भोज है न।'

आचार्य महोदय के निपट घरेलू मामलों मे भी के० डी० की यह निष्ठा देखकर मैं बहुत लज्जित हुआ। सच तो यह है कि सेन्फोराइज्ड *निष्ठा इस देश के इतिहास में हनुमान के बाद सीधे* के० डी० में जनमी है। सब्जी-बाजार में के० डी० का परिश्रम देखने के बाद आचार्य को बधाई देने के सिवा और कोई चारा नहीं रह गया। सो, मैं तत्काल आचार्य को ऐसे विरल रिसर्च-फेलो की खोज के लिए बधाई देने दौड़ गया।

आचार्य प्रवर के निवास पर आयोजित भोज मे के०डी० की प्रतिभा का इस्तेमाल दूर से ही नजर आ रहा था। जिस प्रसन्न मुद्रा में वे काम कर रहे थे, उसे देखकर शेष मन्दमति चेले-चमचों को प्रेरणा मिल रही थी। उस समय के० डी० बारी-बारी से हर चीज परोसने मे व्यस्त थे। अपनी घनघोर व्यस्तता के बीच समय निकालकर के० डी० एक बार मेरे सामने भी आए और उन्होंने कृपापूर्वक पूछा, 'और कुछ चाहिए आपको?'

मैं धन्य हो गया। कहा, 'नहीं, इनायत है।'

विनम्रता के साथ सहज स्वर में के० डी० बोले, 'जी नहीं, इनायत तो नहीं बना है। और कुछ मांगिये!'

यह सुनकर हम सभी बधाई देने जूठे हाथ ही आचार्य के पास पहुंच गए। सबने एक स्वर से के० डी० की महत्ता की प्रशंसा की। उस दिन आचार्य ने यही कहा कि के० डी० रिसर्च फेलोशिप के इतिहास मे मील का पत्थर है।

कवि के मन कुछ और है....

अपनी बात शुरू करने के पूर्व मैं इस देश को और यहां के कवि-पुंगवों को नमस्कार कर लेना चाहता हूं। यही वह परम पावन भारत-भूमि है, जहां किसी जमाने में रसिकवर केशवदास को अपने सफेद बालों के कारण चन्द्रबदन वाली मृगलोचनियों से महज इसलिए 'बाबा' जैसा भयानक सम्बोधन सुनना पड़ता था कि उन दिनों हेयरडाई कराने का फैशन नहीं चला था। इसी धरती पर कविवर बिहारी लाल को प्रति दोहा एक अशर्फी के हिसाब से टिप मिला करती थी। यहीं ऐसे कवि होते रहे हैं, जिनकी मौजूदगी में राजा सुन्दरियों की कंचुकी खोलते थे और बेचारा कवि दोहा सुनाने के सिवा और कुछ नहीं कर पाता था। इसी भारतवर्ष में माताएं प्रार्थना करती हैं कि मेरा बेटा कवि बने और जनता को सताता रहे। ऐसे दिव्य कवि इसी देश में पाए जाते हैं, जो बार-बार छूट होकर भी अपनी कविता सुनाने का लोभ संवरण नहीं कर पाते। मैं इस देश और यहां के कवि-कर्म में बिजी प्राणियों को एक साथ नमस्कार करता हूं।

कविता की ताजी दशा यह है कि बेचारा कवि कहता कुछ और है तथा रीडरगण उसका कुछ और ही अर्थ निकाल लेते हैं। कवि के मन में कविता लिखते समय जो भाव रहते हैं, पाठकों तक पहुंचते-पहुंचते उनका कायाकल्प हो जाता है। आजाद देश के पाठक और श्रोता इतने आजाद तो होते ही हैं कि कविताओं के अर्थ मनमाने ढंग से निकाल सकें। इसमें सन्देह नहीं कि कविताओं को सुनने, पढ़ने और उनका अर्थ समझने में बड़ा मजा आता है। वोरियत की मधुमती भूमिका में पहुंचकर लोग कविताओं के अर्थ बिलकुल निजी शैली में निकाल लेते हैं। एकदम जरूरी नहीं कि अर्थ कवि के भावों से मेल खाये। यहां आकर आचार्य

भरत, लोल्लट, शंकुक आदि द्वारा प्रतिपादित साधारणीकरण का सिद्वात गहरी नींद मे सो जाता है और उसके खर्राटों की आवाज़ भी सुनाई पड़ने लगती है। पाठक और श्रोतावर्ग को कविता का एकदम मौलिक भावाभास और अर्थाभास होने लगता है। इसी मौलिकता के नमूने के रूप में उस महाकवि की कविता की अर्थ व्याप्ति प्रस्तुत है, जिसे निराला जी हमेशा कुश्ती के लिए ललकारा करते थे।

सुमित्रानन्दन पन्त की कविताई के सम्बन्ध मे आलोचकों के बीच मत-वैभिन्य है। कुछ की निगाह मे पन्त जी काफी शाकाहारी किस्म के कवि हैं, क्योंकि उनकी तीन चौथाई कविता घास, पेड़ और झाड़ी जैसी चीजों से भरी है। कुछ लोग उन्हे कवियों में सौम्य सन्त भी मानते हैं। इन्ही पन्त जी की कविता के बारे मे एक अप्रतिम प्रतिभाशाली छात्र ने अपनी कापी मे लिखा था कि—'नौका विहार' सुमित्रा कुमारी पन्त की बनाई हुई कविता है, जिसमे राम और भरत के नौका-विहार का वर्णन है। सो, इन्ही महामहिम पन्त जी की 'मौन निमंत्रण' कविता की कुछ पंक्तियां अर्थ की व्यापक बहस के लिए प्रस्तुत की जा रही हैं—

'देख वसुधा का यौवन-भार
गूंज उठता है जब मधुमास
विधुर उर के-से मृदु उद्‌गार
कुसुम जब खुल पड़ते उच्छ्वास
न जाने सौरभ के मिस कौन
सन्देशा मुझे भेजता मौन ?।

इन पंक्तियों को सुनकर या पढ़कर किसी भी सहृदय श्रोता या पाठक का हृदय पिघल सकता है। बड़ी ही रसात्मक व्यंजना है। कविवर पन्त की इन पंक्तियों में वसुधा का यौवन-भार कवि का रसिक मन साफ देखता है। यौवन कहां-कहां भार डालता है, इसे अधिक डिटेल में लिखने की जरूरत नहीं। हिन्दी कविता के इतिहास के पूरे दो सौ वर्ष इसी की व्याख्या में निकल गए थे। तो पन्त जी का मन वसुधा के दुःसह यौवन भार को देखकर डोलने लगता है। पन्त-साहित्य पर शोध

करने वाले विद्वानों को यह प्रसंग और भी उलझाएगा कि हमारे मुहल्ले के रामजीवन बाबू की बेटी का नाम भी वसुधा ही है। यह वही वसुधा है जो पिछले साल रामू धोबी के साथ भाग गई थी और साल पूरा होने के पहले ही बिना कलफ लगे कपड़े की तरह वापस आ गई है। यह रिसर्च का विषय है कि पन्त जी को इसी वसुधा के यौवन-भार को देखने का चांस मिला था अथवा उनके इलाके में कोई और वसुधा ऐसी ही क्रांति कर रही थी। जो वसुधा हमारे मुहल्ले की है, उसका यौवन रूपी भार नितान्त असहनीय है और इसी भार को उतार फेंकने के लिए बेचैन होकर वह भागी भी थी। वह लौट आई है, लेकिन भार ज्यों का त्यों है। पन्त की कविताई पर रिसर्च करने वाले स्कॉलर उसके भार को हल्का करने में मदद कर सकते हैं। बेचारे पन्त जी की ट्रेजेडी यह है कि अब बुढ़ापे और बीमारी के मणि-काचन संयोग के कारण वे इस पुण्य के योग्य नहीं रह गए हैं। इसी कारण जब मधुमास गूंजने लगता है, तब उनके हृदय के सारे मीठे-मीठे उद्गार विधुर के हृदय की आवाज की तरह बेसुरे हो जाते हैं। 'गुंजन' का यह कवि मधुमास मे बेक़रार हो उठता है। सब ओर बसन्त की बहार! ऊपर से वसुधा का यौवन भार! प्यार ही प्यार! क्या करें पन्त जी? सारे अरमान दब कर रह जाते हैं। लेकिन, कवि की निगाह केवल वसुधा पर ही नहीं थी। कुसुम नामक एक दूसरी बाला पर भी उनकी कृपा दृष्टि थी। सो, अपनी कविता की अगली पंक्ति मे उन्होंने उसी कुसुम को सम्बोधित किया है। हे कुसुम! ऐसी हालत में मन के उच्छ्वास आउटडोर में चले आते हैं। कुसुम की उम्र भी अब पन्त जी जैसी ही हो गयी होगी। कई बच्चों की दादी भी बन गई होगी और अपने घर की नई बहुओं को परिवार नियोजन का मंत्र देती होगी। उस कुसुम को कविप्रवर नहीं भूले हैं। उसकी याद करके ही उच्छ्वास निकल पडते हैं। कविता की अगली पंक्तियां पन्त जी की सुकोमल रसिकता को एक बार फिर सिद्ध करती हैं। हमारे पड़ोस मे जो डॉ० सौरभ रहते हैं, उनकी कन्या से भी कवि के मधुर सम्बन्ध हैं। साफ लिखा है—'न जाने सौरभ के मिस कौन?' सौरभ साहब की पाच पुत्रियां हैं और सभी मिस हैं। अब जो

दहेज प्रथा का खात्मा हो रहा है, इससे इन कन्याओं के मिसेज बनने के आसार नजर आ रहे हैं। वरना मिस्टर सौरभ के यहां सबसे बड़ी मिस की उम्र मात्र चौंतीस वर्ष है। अब पन्त जी का कांटा किसके साथ भिड़ा है, यह रिसर्च का विषय है। लेकिन, कविता की इन पंक्तियों से इतना जरूर जाहिर होता है कि सौरभ साहब की किसी न किसी लड़की की ओर से कवि को इस उम्र में भी मौन निमंत्रण आता है। जो लोग छिपकर प्यार का नाटक करते हैं, उनके पास सारे निमंत्रण मौन ही आते हैं। बाक़ी लोगों के पास पत्र या सीटी की शक्ल मे आता है। इस प्रसंग पर डी॰ लिट॰ के योग्य थीसिस तैयार हो सकती है कि पन्त महोदय के पास निमंत्रण की किन मौन शैलियों से मिस साहिबा का सन्देश आता था। मिस शब्द के अर्थ-बोध में कोई परेशानी नहीं होनी चाहिए। पंडित सदन मिश्र के जमाने से ही 'मिस' का अर्थ कुंआरी कन्या है। कुल मिलाकर, पन्त जी की इन पंक्तियों मे कवि महोदय की विविध प्रेमिकाओं का खुले शब्दों में वर्णन मिलता है। वरना हिन्दी के कवि इतने दग़ाबाज हैं कि कविता में प्रेमिका नाम जरूर बदल देते हैं। जैसे कविवर पन्त की ही छायावादी बिरादरी के एक और महाकवि जयशंकर प्रसाद की काव्य रचना की कलाबाजी द्रष्टव्य है—

'तुम कनक किरण के अन्तराल में
लुक-छिप कर चलते हो क्यों ?
नत मस्तक गर्व वहन करते
यौवन के धन रसकण ढरते
हे लाज भरे सौन्दर्य ! बता दो
मौन बने रहते हो क्यों ?'

क्या सफाई है ! अन्धा भी यह कह सकता है कि कविता किसी पुरुष को सम्बोधित है। लेकिन सच्चाई यह नहीं है और वास्तविकता तो यह है कि जयशंकर प्रसाद के काव्य विषय को लेकर बड़ा विवाद है। एक बार किसी ने पूछा भी था कि आपकी कविताओं मे जिसका प्रेमपूर्ण व्यापक वर्णन मिलता है, वह पुरुष है या स्त्री ? तब जयशंकर

प्रसाद ने हंसकर कहा था कि उसने कभी मेरे सामने से परदा नहीं उठाया है। लेकिन, यह वक्तव्य कवि सुलभ चालाकी के सिवा कुछ और नहीं। जिस कविता की छः पक्तियो को उद्धृत किया गया है, उसमे यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि सारा वाकया कन्याओ से सम्बन्धित है।

इन पक्तियो से कवि महोदय के कन्या प्रेम का पता चलता है। काशी के प्रसादयुगीन गजेटियरो से यह मालूम हुआ है कि उन दिनों दाल मण्डी में कनक और किरण नामक वेश्याएं नही थीं, लेकिन इन नाम की वेश्याए कानपुर मे उपलब्ध थी। उन्ही के बहाने कवि ने काशी की किन्ही दो कन्याओ को अपना काव्य विषय बनाया है। पूरी कविता मे कन्याओं को पुरुषोचित सम्बोधन दिए गए हैं, ताकि कन्या के गार्जियन को उलझन बनी रहे, सच का बोध न हो और पिटाई न हो। वरना सच लिखकर हरिशंकर परसाई की तरह पिट जाने मे समय नही लगता इस देश में। तो कनक और किरण की ही दोनों प्रतिवेशी कन्याए कवि प्रवर के सामने लुक-छिपकर चलती हैं। सामने आ जाने पर दोनो ही कन्याएं नतमस्तक हो जाती हैं और बाद मे लुक-छिपकर देखा करती हैं। यह व्यवहार कवि को पसन्द नही। जिन कन्याओं के यौवन का रसकण चारो ओर सुगन्ध फैला रहा है, उनका यह छिपा प्रेम कवि को अजीब लगता है। मुहल्ले के कई हीरो हर रोज उन कन्याओ के रसकण मे डूबने के लिए आतुर होकर रोडमास्टरी करते हैं। लेकिन, कन्याएं न उनकी ओर ध्यान देती हैं और न कवि को ही खुले तौर पर कोई निमंत्रण देती हैं। इसी तरह कही यह जवानी दीवानी न बीत जाए, इस भय से शंका प्रकम्पित होकर कवि ने सवाल किया है—'हे लाज भरे सौन्दर्य, तुम मौन क्यों हो?' यानी, मौन और लाज का कार्यक्रम कुछ देर ही चलाया जा सकता है। इन भावों के परमानेंट होने पर तो कवि और कन्या दोनो का समान अहित होगा। इस तरह इन पक्तियो मे जयशंकर प्रसाद ने अपने मुहल्ले की दो बालाओं के गुप्त प्रेम का अंकन किया है। यह इतना गुप्त है कि डॉ० माता प्रसाद गुप्त, डॉ० दीनदयाल गुप्त और डॉ० जगदीश गुप्त—सम्प्रदाय के आलोचक भी इसकी गहन

गुप्तता नही भेद सके ये।

सच तो यह है कि कविता मे निहित गुप्त तत्वों का सही उद्‌घाटन पाठक ही कर सकता है। कवि इस कला पर कोई रोक नहीं लगा सकता और न आलोचक ही इस मामले में उसकी कुछ मदद कर सकता है। काव्यार्थ की इस खोजमयी बोधधारा का भविष्य बड़ा ही उज्जल है। इस ही काव्य की आत्मा नही है, शेष आत्माए भी इतनी ही महान हैं और सही पाठक के अभाव में तड़पती रहती है। सो, इन सारी आत्माओं की शांति के लिए हमें मिलकर प्रार्थना करनी चाहिए। ओम् शांति:! शांति:!! शांति:!!!

बाल वर्ष में मेरी बाल-समस्याएं

कल जब हम लोग पड़ोस मे चहलकदमी करके लौटे तो दरवाजे पर ही बच्चे बहुत उत्साहित मुद्रा में मिले। बालवर्ष के इस मध्यकाल में ही बच्चों का उत्साह देखकर मन गद्‌गदायमान हो गया। कुछ पूछने से पहले ही बड़े साहबजादे ने बतलाया—

'आज हम लोगों ने ड्राइंगरूम की सफाई की है।' छोटी बेटी ने खबर दी कि उसने मेज का शीशा साफ किया है। इन दोनो के मुकाबले मे बड़ी लड़की ने अभी तक अपनी कारीगरी का बयान नही किया था। पूछने पर उसने कहा—

'मैंने टूटा हुआ शीशा उठाकर बाहर फेंका।' और, अन्दर जाकर हमने देखा कि ड्राइगरूम वाकई साफ हो चुका था। मेज का शीशा गुम था, कोने मे रखा आर्टपीस गायब था और आगरा से मंगवाया गया ताजमहल का माडल शायद शर्म के मारे वापस भाग गया था। मैं अपने ड्राइगरूम का वर्णन नही कर रहा हू। अपनी समस्याओ का जिक्र कर रहा हूं। मेरी चार समस्याएं हैं और ये सभी समस्याएं बहुत प्यारी हैं। जी हां, मैं अपने बच्चो का जिक्र कर रहा हूं। यही वे समस्याएं हैं, जिनसे मैं घिरा हू। शादी के पहले मेरे पास बच्चों के पालन-पोषण के बारे में चार सिद्धात थे और आज हालत यह है कि मेरे पास चार बच्चे हैं, सिद्धान्त कोई नही। मेरे बच्चो में किसी को भी समस्या के घेरे मे समेट लेने की अद्‌भुत क्षमता है। आइए, मैं आपका परिचय उनसे कराऊं। बड़े साहबजादे सबसे बड़े हैं। नाम गुल्लू। कुछ महीने पहले तक अपना नाम 'ट्रुल्लू' बतलाते थे, लेकिन अब सयाने हो गये हैं और सींक का बहुवचन झाड़ू बतलाने लगे हैं। इस सफाई से क्रिकेट खेलते हैं

कि खिड़की के तमाम शीशे आउट हो गये है और वक्त-बेवक्त गेंद उनकी बैटिंग से घबराकर हमारे मुखमण्डल की शरण मे आ जाती है। पढ़ने-लिखने के मामले में भी महासीरियस हैं। उन दिनो परीक्षाए चल रही थी तो एक दिन स्कूल से लौटकर सीधे भगवान शंकर की तस्वीर की साइड मे हाथ जोड़कर खड़े हो गए। आंखें मूदकर प्रार्थना करने लगे—

'हे भगवान, गुजरात की राजधानी गया बना दो।'

यह प्रार्थना सुनकर हम लोग चकराए। पूछने पर इन्होंने बतलाया कि आज परीक्षा में यही लिख आए है। ऐसे ही एक बार गाय पर लेख लिख रहे थे, तो हमने सवाल किया—

'गाय के चमड़े से क्या लाभ है ?'

जवाब मिला—

'वह गाय को लपेटे रहता है।'

इसका मतलब यह नही कि श्रीमान् गुल्लू के पास व्यावहारिकता की कमी है। दरअसल उनकी जरूरत से ज्यादा चालाकी ही हमारी समस्या है। एक दिन मेरे साथ बाजार में घूम रहे थे। श्रीमतीजी की फिक्स्ड डिपाजिट से प्राप्त पैसों मे अल्प बचत करके मैंने साहबजादे को रसगुल्ले खिलाए और समझाया—

'देखो गुल्लू ! आज तुमने जो रसगुल्ले खाए उनके बारे में मम्मी से नही कहना, नही तो फिर कभी रसगुल्ले नहीं खिलाऊंगा।'

इस पर हमारी संतान नम्बर एक ने कहा—

'एकदम नही। मम्मी से क्यो कहूंगा ? मम्मी घर पर जो मिठाइयां मंगाकर खिलाती हैं, क्या मैंने इसके बारे में आपसे कभी कहा है ?'

यह सुनकर हम एकदम यथार्थवादी हो गए और वीर रस में डूबते-उतराते घर पहुंचे। घर के पास आते-आते हमारा वीर भाव शांत रस में बदल गया और श्रीमतीजी सुपुत्र के साथ ठेठ वात्सल्य रस मे बातें करने लगी। इन साहब के कारण कई बार विचित्र समस्याओ का

सामना करना पड़ा है। कुछ ही दिन पहले की बात है इनकी मम्मी बाजार से लौटी तो इन्होंने बतलाया—'आज हमने डाकिया बनने का खेल खेला।'

मम्मी ने पूछा—'वह कैसे ?'

होनहार ने बतलाया—'आपकी सन्दूक में पापा की जितनी भी चिट्ठियां थी, वे हमने मुहल्ले भर में बांट दी।'

यह सुनने के बाद हमारा मुखारविन्द कितना दर्शनीय हो गया होगा, इसकी आप सिर्फ कल्पना कर सकते हैं। गुल्लू महाराज के साथ सबसे बड़ी समस्या यह है कि उनके पास सवालों का अक्षय भण्डार है। प्याज के छिलको की तरह उनके सवाल मे से सवाल निकलते चले जाते हैं। मजा यह है कि उनका हर सवाल मौलिक होता है। मसलन मंदिर में घंटो की जगह कालबेल क्यों नही लगती ? लोग गोभी का फूल गुलाब की तरह क्यों नहीं सूंघते है ? काली भैंस का दूध सफेद क्यों होता है ? वगैरह-वगैरह। एक दिन मुझसे बोले, 'पापा ! कल हमारी मैडम कह रही थी, हम लोग गुरुत्वाकर्षण के नियम के कारण ही जमीन पर रहते है, ऊपर नही उठते हैं। क्या यह बात ठीक है ?' मेरे हां कहने पर इन्होंने अपना सवाल दागा—'ऐसी बात है तो पापा, जब यह नियम नही बना था, तब यह लोग जमीन पर कैसे रहते थे ?'

सच तो यह है कि अकेले बड़े साहबजादे की कलाकारी का बयान ही पी-एच० डी० की थीसिस जितना भारी-भरकम हो सकता है। लेकिन मुझे तो अपनी शेष समस्याओं का भी परिचय देना है। तो यह है मेरी दूसरी समस्या—मेरी बड़ी बेटी गुड्डी। खाने और बोलने में बहुत होशियार है यह समस्या। घर मे कहीं भी रखो मिठाई और फलों की खोज करने मे जब हम लोग फेल हो जाते हैं, तब गुड्डी की प्रतिभा काम आती है। गुड्डी का हाल यह है कि वह पढ़ाई के सिवा हर मामलों में आगे है और हमारे लिए हर रोज एक नयी समस्या खड़ी कर देती है। एक बार उसकी क्लास में स्कूल इंस्पेक्टर आए और बच्चों की परीक्षा लेने लगे। उन्होने सभी बच्चो से चुपचाप आंखें

बन्द करने को कहा। जब बच्चों ने आखें मूद ली, तब इस्पेक्टर ने मुह से चिड़िया के चहकने की आवाज निकाली और कहा—'आखें खोलो बच्चों और बोलो मैंने क्या किया ?' इस सवाल के जवाब मे सारी क्लास चुप रही, लेकिन हमारी गुड्डी उठकर बोली—'आपने हमारी मैडम की पप्पी ली है।' यह घटना मुझे स्वय गुड्डी की मैडम ने बतलाई थी और यह जानकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई थी कि गुड्डी का जनरल नॉलेज इतना तगड़ा है। वार्षिक परीक्षा मे फेल होने के बाद गुड्डी मेरे पास पहुंची और बोली—'पापा ! आप आंखें मूदकर अपना नाम लिख सकते हैं ?'

मैंने कहा—'जरूर, क्यों नही।'

गुड्डी बोली—'तो जरा आंखें मूदकर इस रिपोर्ट-बुक पर अपना नाम लिखकर दिखाइए।'

दरअसल गुड्डी के समस्या-निरूपण की अपनी निजी शैली है। उसके पास फरमाइशों का अम्बार है और ठीक यही हाल उसकी छोटी बहन का भी है। जी हां, मेरी तीसरी समस्या मेरी दूसरी बेटी है। नाम है गीता। बहुत छोटी है, करीब तीन साल की। अभी उसने कामता प्रसाद गुरू के हिन्दी व्याकरण के हिसाब से वाक्य बनाकर बोलना नहीं सीखा है, लेकिन यह सीख लिया है कि अपना काम कैसे निकाला जाता है और किससे कौन-सा लाभ उठाया जा सकता है। तो यही समस्या है हमारी कि यह छोटी बेटी अब बोलने लगी है और बोलकर हमे परेशान कर डालती है। उस दिन मुझी से सवाल कर बैठी कि पटना दूर है कि चन्दामामा। फिर खुद यह फैसला भी उसने दिया कि चन्दामामा नजदीक है और पटना दूर है। वजह यह कि पटना नही दीखता है और चन्दामामा रोज ही दीखता है। गीता कुछ दिन तक अंगूठा चूसती फिरती थी। एक दिन हमने समझाया कि देखो गीता ! अगर तुमने अंगूठा चूसना नहीं छोड़ा तो तुम्हारा पेट फूलने लगेगा और आखिर में फट जाएगा। गीता की समझ में बात आ गई और उसने अंगूठा चूसना छोड़ दिया। एक दिन कोई गर्भवती महिला हमारे यहां आयी। उन्हें

गीता ने गौर से देखा और बोली—'आंटी ! मुझे मालूम है कि आप क्या करती रहती हैं।'

इन दिनों गीता से हम उतने परेशान नहीं, जितने कि अपने छोटे साहबजादे से हैं। यह लघु मानव समूचे घर में सम्पूर्ण क्रांति मचाने के लिए अकेला ही काफी है। उसकी तिकोनी लंगोटी के बारे में आज तक इस फैसले पर नहीं पहुंचा हूं कि इसका लम्ब किधर है, आधार कहां है और कोण कौन सा बन रहा है। इसी तरह मैं अपनी इस चौथी और अंतिम समस्या की मांगों के बारे में भी कोई फैसला कभी नहीं कर सका हूं। संगीतशास्त्र के सभी आरोह-अवरोहों का ठोस ज्ञान है हमारे गुड्डू को। अर्ध-रात्री में जब यह संगीत छेड़ता है तो हमको ही नहीं, समूचे मुहल्ले को मजा आ जाता है। हमारी नींद के इस जन्मजात शत्रु में विलाप का मूड उस समय भी जगता है, जब मैं कोई जरूरी काम आरम्भ करता हूं। इधर मैंने शुरू किया और उधर हमारे लघुमानव सप्तम स्वर में विलाप करने लगते हैं, लिहाजा हमारे काम का वहीं उपसंहार हो जाता है और हम गुड्डू लाल को शांत करने में भगीरथ वाली तत्परता दिखाने लगते हैं। इसकी जाग्रतावस्था भी कम कष्ट-दायक नहीं है। अपने कार्य-क्षेत्र में किसी समान को स्थिर छोड़ देना इनके लिए इज्जत का सवाल है। कभी-कभी गुड्डू महाशय का उपयोग इनके बड़े भाई-बहन बड़े मौके पर करते हैं। एक बार हमारे मित्र ने दरवाजा खटखटाया और गुड्डू ने दरवाजा खोला।

मित्रवर ने पूछा, 'पापा घर पर हैं ?'

गुड्डी बोली, 'नहीं।'

मित्रवर ने फिर पूछा, 'और कोई है जिससे मैं बात करूं ?'

गुड्डी बोली, 'हां, मेरा भाई है।'

और वह गुड्डू लाल को गोद में उठा लायी। बोलने में असमर्थ और रोने में गोल्डमेडलिस्ट गुड्डू भाई को देखकर मित्रवर का जो हाल हुआ होगा, उसकी आप कल्पना कर सकते हैं। तो यह हाल है हमारे बच्चों का उर्फ समस्याओं का। कभी दीवार पर कोयले से लिखे मिना-

लेखों को पढकर पता लगाते हैं कि यह किसका नाम है। कभी हम चादर पर स्याही के धब्बे को देखकर अपने बालगोपाल को याद करते हैं। कभी हम सोफे पर चढ़ाए गए कवर को देखकर खुश होते हैं कि इसे हमारे ही होनहार बच्चों ने ब्लेड से खण्ड-खण्ड किया है। यानी समूचे घर में इन महानुभावों की छाप मौजूद है और हम सबको बाल वर्ष पर भरपूर सुख मिल रहा है।

सब चलता है

ठीक सौ साल पहले कविवर मैथिली शरण गुप्त का जन्म हुआ था और तब से लगातार उनसे मिलने के प्रोग्राम मैं बनाता रहा, लेकिन अपनी व्यस्ततावश उनसे कभी न मिल सका। हारकर बेचारे अब से बाईस साल पहले अनंतयात्रा पर निकल गए और ताजा समाचार यह है कि आज तक नहीं लौटे हैं। कल उनकी 'भारतभारती' के पन्ने पलटने का चास मिला तो यह देखकर परम प्रसन्नता हुई कि राष्ट्रकवि भी ठीक मेरी ही तरह देशदशा से दुबले होते रहते थे। उनकी तस्वीरें गवाही देती हैं कि वे दुबले-पतले सज्जन थे और स्थिति यह है कि खाकसार भी वैसी ही हेल्थ का स्वामी है तथा भविष्य मे राष्ट्रहित के लिए ककड़ीवत होने के लिए भी तैयार है। लेकिन अपना देश इतना महान और विशाल है कि मेरे जैसे लोकमंगलकारी प्राणी की सेवाएं प्रचुर मात्रा मे नही ले रहा है। अन्यथा मेरे पास सेवा का थोक स्टॉक है। अफसोस तो इस बात का है कि इधर हम अपनी प्राइवेट समस्याओं को शटिंग मे डालकर देश सेवा के लिए व्याकुल हैं और उधर सब चलता है।

जी हां, सब चलता है। यह अकेला महामंत्र ही इस महामानव समुद्र को चला रहा है। आप कहीं भी कुछ भी करने के लिए परम फ्री हैं। आप किसी भी दफ्तर के किसी भी कमरे में जब चाहें तब ससम्मान प्रवेश कर सकते हैं। विद्यार्थी जब चाहें तब कक्षा मे पधार सकते हैं और इच्छानुसार महाभिनिष्क्रमण भी कर सकते हैं। रेलो और बसो को यह पूरी छूट प्राप्त है कि वे अपनी मर्जी से चलें और जनता को यह अधिकार प्राप्त है कि वह रेलों और बसों पर अपनी मर्जी से लदे। बोलने वाले को सुविधा मिली हुई है कि वह शांतिपूर्वक बोले और सुनने

वाले को यह छूट उपलब्ध है कि वह शांतिपूर्वक सोए। हालत यह है कि हर दिशा में सुविधा एक्सप्रेस दौड़ रही है और हर एतराज़ का एक ही रेडीमेड जवाब है—सब चलता है। यही कारण है कि बीच राह पर किसी गाय या बैल को अनशन की मुद्रा में विराजमान देख कर किसी सच्चे भारतवासी के मन में एक सेंटीमीटर भी आश्चर्य नहीं होता। वह सड़क ही क्या जिसके बीचों-बीच स्थापित होकर गौमाता अथवा उनके वंशज मनुष्य-चालित वाहनों को ब्रेक मारने के लिए विवश न करें। वह सड़क ही क्या जिस पर चांद की तरह हर कदम पर क्रेटर न हों। बरसात के मौसम में जल और स्थल का भेद मिटा देने वाली प्राकृतिक छटा इन सड़कों पर अपने चरम उत्कर्ष पर रहती है। राह चलते हुए आपका पैर कीचड़ की ताजी आईसक्रीम से सन जाए अथवा पास से गुज़रती हुई कार के प्रसादस्वरूप आपके कपड़े वीरगति को प्राप्त हो जाएं तो आप किसी से शिकायत नहीं कर सकते हैं। आप अपनी राह कोई फिल्मी गीत गुनगुनाते हुए बाईं ओर की फुटपाथ पर जा रहे हैं और उसी फुटपाथ पर सामने की ओर से आ रहे किसी वेगवान पुरुष से आपकी टक्कर हो जाए, तब भी आप उन्हें बाईं ओर चलने का हितोपदेश नहीं सुना सकते हैं। वजह यह कि यहां सब चलता है।

इस महामंत्र का साकार रूप उस दिन नज़र आया था जिस दिन मैं पटना से गया आने वाली ट्रेन पर सवार हुआ। ट्रेन नियमानुसार अपने निश्चित समय से नब्बे मिनट विलम्ब से चली और पटना शहर के विभिन्न मुहल्लों में तीन बार रुकते-रुकते बची। मेरे सामने बैठे हुए सज्जन ने मेरे हाथ का अखबार आदि से अंत तक बांच लेने के बाद ऐसी हिकारत भरी नजर से मेरी ओर देखा, जैसे डांट रहे हों कि यही सड़ा हुआ अखबार खरीदते हैं आप? उनके सवालिया मुखड़े से सहम कर मैं अपना अखबार पढ़ने लगा और थोड़ी ही देर बाद पाया कि ट्रेन एक आदर्श भारतीय गांव के सामने रुक गई है और चंद रेलयात्री ट्रेन से सधन्यवाद उतर कर गाव की ओर प्रस्थान कर रहे हैं। यह देखकर मैंने अपने सहयात्री के सामने ध्यानाकर्षण प्रस्ताव रखा कि ट्रेन को इस तरह

थोड़े से ग्रामवासियों की सुविधा के लिए नहीं रुकना चाहिए। वे अत्यन्त वीतराग महात्मा की तरह बोले'''सब चलता है।'

ट्रेन चल पड़ी तो हमारी बातचीत का सिलसिला भी चल निकला। मैंने उन्हें बताया कि शहरों में सरेबाज़ार लूट और हत्या की वारदातें आम हो गई हैं, तो उन्होंने फरमाया कि सब चलता है। मैंने उन्हें बताया कि यह देश इंजीनियरों और ठेकेदारों का स्वर्ग बन गया है; तो वे उतनी ही तत्परता से बोले कि सब चलता है। मैंने कहा कि भ्रष्टाचार का झरना ऊपर से नीचे तक बहता चला जा रहा है, तो उन्होंने सूचित किया कि सब चलता है। मैंने जब बताया कि पटना में एक महिला ने पांच बच्चों को जन्म दिया है, तब भी वे उसी सदा सुहागन शैली में बोले कि सब चलता है। वे बर्फी की तरह चौकोर सज्जन थे, लेकिन अपना यह छोटा सा वक्तव्य इमरती की तरह घुमावदार स्टाइल मे प्रस्तुत करते थे। मैं आपादमस्तक उनकी छवि निहारने लगा कि यह कैसा महामानव है जिसकी संवाद—योजना 'सब चलता है' से आगे ही नहीं बढ़ रही है? तभी पास बैठे हुए एक अन्य महापुरुष सहसा खड़े हो गए और डिब्बे में लगे रोशनी के बल्बों को अत्यंत मनोयोगपूर्वक निकालने लगे। आसपास के कई बल्बों को उतार कर उन्होंने अपने झोले में डाला। वह झोला भी प्राचीनकाल में प्रथम श्रेणी की सीट-कवर काटकर बनाया गया था। अपना झोला हाथ में लेकर वे खतरे की जंजीर खींचने लगे। यह देखकर मैंने अपने सहयात्री को एक बार फिर कुरेदा, लेकिन वे इस बार भी इतना ही कह सके'''सब चलता है। जंजीर खींचने के परिणामस्वरूप ट्रेन रुकी तो झोलाधारी सज्जन उतर कर सामने के गांव में समा गए। उनके सम्मान में ट्रेन तब तक रुकी रही, जब तक वे वापस ट्रेन में नहीं पधारे। मैंने उन्हीं से निवेदन किया कि आपके सौजन्य से यह ट्रेन आधे घंटे तक क्यों रुकी रही, तो उन्होंने हंसते हुए निवेदन किया कि सब चलता है।

यह तो एक यात्रा की कथा सुनाई हमने कि समूचा देश कितनी निश्चिन्तता से चल रहा है। सच तो यह है कि देश-दशा की चिन्ता करने वालों को भी अच्छी तरह पता है कि बेहतर चिन्ता करने से लाभ

कुछ भी नही है। हम चाहे देश की दुम लाख सीधी करना चाहें, यह टेढ़ी की टेढ़ी ही रहेगी। 'सब चलता है' का मंत्र जिसने रट लिया है और इसका रहस्य जान लिया है, वही वास्तविक सिद्ध पुरुष है। बड़ी-बड़ी सगोष्ठियो और कार्यसमितियों की बैठको के बाद अत मे यही निष्कर्ष सामने आता है कि चलने दो यार, सब चलता है।

पिछले साल मैं एक अखिल भारतीय संस्था के अखिल भारतीय आयोजन मे गया था, जिसमे सातवी कक्षा के छात्रों के लिए हिन्दी की पाठ्य-पुस्तक तैयार करने की तैयारी की गई थी। समूचे हिन्दुस्तान से आये विद्वानो ने आवास की व्यवस्था पर संतोष व्यक्त किया और नाश्ते में चटनी के अभाव पर खेद प्रकट किया। इस विषय पर सभी महानुभाव एकमत थे कि रात का खाना लजीज होता है, लेकिन सभी असन्तुष्ट थे कि भोजन के बाद मीठे का इंतजाम नही है। कुल मिलाकर स्थिति यह रही कि अतिथि और उनके स्वागती सब-के-सब जलपान और भोजन की शास्त्रीय चिन्ता मे ही लगे रहें। समारोह के समापन के दिन सातवी कक्षा के पाठ्यक्रम निर्माण का भार एक जूनियर टीचर पर डालकर सभी अपना-अपना टी० ए० बिल स्वीकृत कराने में व्यस्त हो गए। एक पराक्रमी विद्वान से मैंने समारोह की उपलब्धियों पर प्रकाश डालने के लिए कहा, तो उन्होने वही अमर वाक्य दुहराया —सब चलता है। यानी सब कुछ ऐसे ही चलता रहेगा। हम सब कुछ नही कर सकते। हम कुछ करें या न करें, स्थिति यह है कि सब चलता है।

अब कल शाम का किस्सा बयान करता हूं। टेलीविजन के पिटारे के सामने सपरिवार बैठकर मूंगफली की ताजी किस्मों की पैदावार के बारे में अपना ज्ञानवर्धन कर रहा था कि मुहल्ले के बालगोपालों का समूह हमारे ड्राइगरूम में घुस आया। थोड़ी देर में उनकी मम्मियों और आंटियों का जत्था भी सशरीर हाजिर हो गया। इसके बाद बिना हींग-फिटकरी जैसे आइटमों के ही सीन पर ऐसा रंग चोखा आया कि मुहल्ले के टी०वी० दर्शकों को कमरे मे छोड़कर मैं पत्नी और बच्चों के साथ घर से बाहर निकल आया। बच्चे अपनी नाराजगी व्यक्त करने लगे तो

हमारी अर्धांगिनी ने उन्हें शान्त करते हुए फरमाया कि चुप रहो, यह सब तो चलता ही रहता है। इस तरह चलते रहने की महादशा यह है कि कल हमारे मुहल्ले के उभरते हुए कुछ हीरो हमारे पड़ोसी कृष्णगोपाल बाबू के अन्त:पुर में घुस आये और उनकी नई नवेली बहू के चारों ओर श्रृंगार रस का वातावरण बनाकर सधन्यवाद लौट गए। उनका तर्क था कि आजाद देश मे जन्म लेने के कारण इस देश में कही भी कुछ भी करने का जन्मसिद्ध अधिकार उन्हें प्राप्त है। अपनी बहू और कन्याओं के निर्माता-निर्देशक कृष्णगोपाल बाबू परमहंस की मुद्रा मे शांत हैं। उन्हे मालूम है कि कुछ नही किया जा सकता, यह सब चलता ही रहता है। अपने सनातन तर्क और अधिकार के सहारे मुहल्ले के हीरो गण आज सवेरे मेरे यहां भी पधारे और वह सारा गाजर का हलवा चट कर गए जो मेरी निजी पत्नी ने खास मेरे लिए परोसा था। हलवे की समाप्ति पर मेरे बच्चों की श्रीमाता अभी तक स्वगत भाषण कर रही हैं और मैं खुश हूं कि नई पीढ़ी का आक्रमण हलवे तक ही सीमित रहा। एकदम रामराज्य है। ऐसा सुहाना वातावरण पहले कहां था? चारों ओर आजादी पसरी हुई नजर आती है। मन के किसी कोने मे अगर यह सवाल जगा कि देश का क्या होगा जनाबे आली, तो हर सवाल का एक ही जवाब है—सब चलता है।

कही कोई छिपाव, कही कोई बनावट नही है। ठेकेदार परिश्रमपूर्वक ऐसी सडकों और पुलों का निर्माण करते हैं, जिनका निर्माण कार्य समाप्त होने के पहले ही मरम्मत का टेण्डर निकल आये। डॉक्टर सिर्फ अमीर रोगियों में रुचि लेते हैं और नेताओं के बारे मे तो कुछ भी कहना बड़ा मुंह और सड़ी बात होगी। अफसरों और पुलिस की कथा तो और भी अकथनीय है। हालत यह है कि—

गोली मेरे नात की जित देखो तित गोल।
गोली लेने वे गये, वे भी हो गये गोल॥

हमारे आसपास जो कुछ भी है सब साफ-साफ है। बिना किसी के चलाए सब कुछ अपने आप चल रहा है इसीलिए उस दिन विश्वविद्यालय

में डिग्री मात्र के लिए विचरण करने वाले युवकों और युवतियों का परम पावन आचरण नजर आया तो मन गद्‌गद हो गया। सारा समुदाय कालेज के अहाते में इस महान समस्या पर नारेबाजी कर रहा था कि छात्रों के कामनरूम में अभी तक वी०सी०आर० क्यों नहीं लगा है। भीतर स्टाफरूम में शिक्षकगण चिन्तन कर रहे थे कि आज तो इस नारेबाजी के फलस्वरूप कक्षा में जाने से बचे, कल कौन बहाना काम आयेगा अन्त में यह फैसला किया गया कि कल यदि लाख समझाने पर भी छात्रों ने हड़ताल नहीं की तो हड़ताल कराने के लिए हम लोग हड़ताल कर देंगे। एक महावरिष्ठ शिक्षक ने यही टिप्पणी की कि—सब चलता है।

बात की शुरुआत हमने राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की देश-चिंता से की थी और वास्तव में उसी बिन्दु पर टिकना भी चाहिए। बार-बार टॉपिक से बहक गया हूं। इधर अच्छे लेखक की यही पहचान हो गई है कि वह मच्छरों की जनसंख्या के बारे में लिखना शुरू करे, तो आसानी से पालक की साग और नई शिक्षा की चुनौतियों आदि पर भी अपने अमूल्य विचार व्यक्त कर दे। मैं भी कई बार बहका हू, इसलिए निश्चय ही महान लेखक हूं। विषयान्तर से आप निराश न हों। क्या कीजियेगा, सब चलता है।

●

तलाश एक दूल्हे की

ठीक इसी मौसम मे एक बार मैं अपनी शादी में सम्मिलित हुआ था। उसके बाद मैं दुबारा अपनी शादी में आज तक शामिल नही हो पाया हूं। लेकिन हर साल इस मौसम मे शहनाइयों का शोर जरूर सुनता हूं। बारातों की धूम लगातार सुनाई देती है, दूल्हो की सजावट चकाचौंध पैदा करती है और दुल्हनों की गंध बेचैन कर डालती है। इस साल भी शादियो का मौसम आ गया है। भारत-भूमि पर बिचरने वाले असंख्य कुमारो और कुमारियों की आज़ादी पर रोक लगने का सीज़न आ गया है। पिछले साल यह मौसम आया था तो हर आंगन में दूल्हे के पधारने पर इकलौता सवाल पूछा जाता था कि मेरे अंगने मे तुम्हारा क्या काम है ? इस साल सवाल बदल गया है। इस साल की केन्द्रीय समस्या यह है कि फुलोरी बिना चटनी कैसे बनेगी। इस अनूठे महत्वपूर्ण सवाल की गूंज हर मुहल्ले की हर गली से आ रही है। फुलोरी बिना चटनी नहीं बन पाने के कारण संतप्त अनेकानेक विवाहोत्सुक नायिकाओ का दुःख हर गांव हर शहर में फैला हुआ है। हमारी चिन्ता भी यही है। कन्याएं इतनी थोक मात्रा में हैं और उनके लिए योग्य वरों की सप्लाई मांग के अनुपात मे अत्यन्त शोचनीय है।

तेरह साल हो गए अपनी शादी को और तब से दूल्हा बनने लायक अच्छे लड़कों का इस जम्बूद्वीप पर घोर अभाव हो गया है। मैं कितना अच्छा लडका था, अब क्या बताऊं ? दूर-दूर से लोग देखने आते थे और अपनी सुकन्या को हमारे चरण-कमलो की दासी बनाने के लिए विकल हो उठते थे। आजकल वैसे लड़के मिलते कहां हैं ?एकदम अकाल पड़ गया है। हालत इतनी नाजुक हो गई है कि पिछले महीने मैंने विवाह के लिए उत्सुक दो कन्याओं को रेलवे स्टेशन पर एक-दूसरे के गले में

लिपटता हुआ देखा। यानी दो दुल्हनें मिलकर एक दूल्हे का काम करने की कोशिश करने लगी है। यूरोप में तो लड़कियां आपस में शादियां भी करने लगी हैं। इसका कारण यही है कि सारे संसार में अच्छे लड़कों का लोप हो गया है। सब ओर दूल्हों की तलाश चल रही है, लेकिन सेहरा बांधने के लिए आदर्श नौजवान धरती पर कितने रह गए हैं ?

इस साल दूल्हे की तलाश का व्यापक अनुभव मुझे मिला। दरअसल पिछले साल से ही हमारी साली क्रम संख्या दो में विवाह की बेचैनी जनता को दिखाई देने लगी थी। उसने पढ़ना-लिखना छोड़ दिया था और पूरी एकाग्रता से गोल-गोल चपातियां तैयार करने में जुट गई थी। वैसे इस बालिका की बनाई चपातियां कभी बिहार के नक्शे जैसी लगती हैं तो कभी पूरे भारतवर्ष का मानचित्र मय नदी-पहाड़ों के साकार हो उठता है। उसकी सबसे बड़ी खूबसूरती यह है कि वह चुस्त न होते हुए भी चुस्त दिखाई देती है। स्मार्टाभाव में भी स्मार्ट दिखने की कला में वह पद्मविभूषण है। वह कपड़े ऐसे पहनती है कि देखने वालों की जान निकल जाती है और मजे की बात यह है कि वह खाना भी वैसा ही पकाती है कि खाने वालों की जान निकल जाए। अपनी सहधर्मिणी की इसी सबसे छोटी बहन की शादी के लिए दूल्हे की तलाश करने निकला तो पता चला कि इस इलाके में कैसा सन्नाटा छा गया है। हमारे जमाने में ऐसा हाल नहीं था। मेरे मुहल्ले में ही अच्छे लड़कों के कई नमूने थे। सबसे अच्छा नमूना तो मैं खुद था और दूसरे नम्बर पर शम्भूनाथ थे। एक बार जब अपनी एक मंगेतर के साथ सफर करने का चांस शम्भूनाथ जी को मिला तो, बड़ी देर तक बात शुरू ही नहीं हुई। आखिर बड़ी तकलीफ के साथ गला साफ करके उन्होंने कहा—'माफ कीजिएगा, आप इसी बस से सफर कर रही हैं ?' इस सज्जनता का फल यह हुआ कि वह मंगेतर किसी और की पत्नी बन गई। इधर शम्भूनाथ जी भी वैसे कहां रह गये हैं। शादी शुदा हो गये हैं और शादी की हर सालगिरह पर उक्त बसगामिनी आर्य कन्या की याद में एक मिनट का मौन जरूर रखते हैं। दरअसल हमारे जमाने के लड़के इतने अच्छे होते थे कि लड़कियां उन्हें लिफ्ट नहीं देती थीं। उन दिनों अच्छी लड़कियों का संकट था।

आज अच्छी-से-अच्छी लड़कियां हर घर में करीने से सजी हुई हैं तो अच्छे लड़के नदारद हैं। अफसोस तो इस बात का होता है कि एक से एक भूकम्पकारी कन्याओं के इस दौर मे हम कुवारे नही हैं। सचमुच शादी ने हमें अवमूल्यित कर दिया, वरना हम भी आदमी थे काम के। खैर···।

मैं अपनी साली नम्बर दो के लिए दूल्हे की तलाश की चर्चा कर रहा था। नगरी-नगरी द्वारे-द्वारे सिर्फ एक दूल्हे की तलाश में जब भटकना पड़ा तब मालूम हुआ कि कन्या राशि के विवाह में अभिभावक समुदाय को कितने किस्म के पापड़ कितनी थलियों में बेलने पड़ते हैं।

सबसे पहले मैं अपने एक सम्पादक मित्र के पास गया। उन्होंने पिछले ही साल अपनी पंचवर्षीय बेकारी का समापन कर एक पत्रिका के सम्पादक की कुर्सी हथिया ली थी। मैंने प्रस्ताव रखा कि इस महीने शादी के मुहूर्त बहुत अच्छे हैं, इसलिए हे सम्पादक जी, आप मेरी साली को पत्नी स्वरूप स्वीकार करें। सम्पादक महोदय तमाम साहित्यिक दोस्ती भूल गए। फरमाने लगे—

'जी नही, मैं इतनी जल्दी कोई चीज स्वीकार नही कर लेता। इसलिए विवाह के लिए पत्नी भी मुझे कम-से-कम तीन माह पहले प्राप्त हो जानी चाहिए।'

हम लोग सम्पादक जी को पत्नी एडवास ही सौंप देने के मूड मे नही थे। लिहाजा दूल्हे की तलाश मे आगे बढ़ गए। हमारी फुआ की ननद के देवर के ससुर साहब ने एक लड़के का पता दिया। हमे बताया गया कि लड़का बहुत बड़े होटल का जनरल मैनेजर है, उसका परिवार बहुत सम्पन्न है, सौ-दो-सौ लोग तो सुबह शाम उसके यहा भोजन करते हैं। जब हम लोग लड़के के घर पहुंचे तो मालूम हुआ कि उसका घर सचमुच बड़ा सम्पन्न है। लड़का अपने सभी भाइयो मे सबसे छोटा था। उसके आठ बड़े भाइयो मे से प्रत्येक की कम-से-कम चार सन्तानें थीं। लड़का एक ढाबे का मैनेजर था और वाकई सुबह-शाम उसके यहां सौ-दो-सौ आदमी भोजन करते थे। यह सब देखकर हम इतने प्रसन्न हुए

कि ताजा खरीदा अखबार वहीं छोड़कर चले गए। इसके बाद एक और दूल्हे की तलाश में हम लोग पास के शहर में गए। लड़के के पिता ने सबसे पहले वर-वधू की जन्म-पत्रियां मिला लेने का आग्रह किया। वे एक-दूसरे से इस हद तक मिलती हुई दिखाई पड़ीं कि लड़की-लड़के की बजाय जन्म-पत्रियों का ही विवाह कर दिया जाता तो उनका वैवाहिक जीवन बड़े आनन्द से बीतता। जन्म-पत्रियों का सुन्दर समन्वय देखकर लड़के के पिता बहुत प्रसन्न हुए। वार्ता के दूसरे चरण में उन्होंने दहेज की चर्चा शुरू की। मैं प्राचीनकाल से ही दहेज देने का विरोधी रहा हूं। कम-से-कम साली की शादी में दहेज देने के पक्ष में मैं एकदम नहीं हूं। लगभग एक दशक बाद मेरे लड़के की शादी होने लगेगी, तब तक शायद दहेज के बारे में मेरे विचार बदल जाएंगे। लेकिन अभी दहेज के बारे में मेरे जो विचार हैं, उन्हें सुनकर लड़के के पिता ने वार्ता का सहसा समापन कर दिया। सीन पर राष्ट्रीय धुन बजने लगी और हम सब उठ खड़े हुए। दूल्हे की तलाश करते हुए मैं एक ऐसे घर में भी गया जो बेहद कलाकारी से सजा हुआ था। जब हम लड़के को देखने गए उस समय वह अपने घरेलू कुत्ते को चिकन सूप पिला रहा था। वाह! क्या लड़का था और क्या कुत्ता था। दोनों ही इतने साफ-सुथरे और सजीले थे कि बहुत देर तक हम यही फैसला नहीं कर सके कि इनमें लड़का कौन है और कुत्ता कौन है। जब लड़के के पिता ने अपने सुपुत्र को बुलाया, तब जाकर हमारी ग़लतफहमी दूर हुई। जिसे हम अब तक कुत्ता समझते थे, वही लड़का था। उसके मजबूत हाथों में अपनी साली का कोमल हाथ सौंपने का दुःसाहस मेरे पास नहीं था। इसलिए हम वहां से भी लौट आये।

दूल्हे की तलाश चल ही रही थी कि अपने परम मित्र सुरिन्दर लाल की याद आ गई। इतने आदर्श लड़के पर अब तक नजर नहीं गई थी। सुरिन्दर लाल को अच्छी नौकरी मिल गई है और देखने-दिखाने के काम भी आ सकता है। एक ही कमजोरी है अपने दोस्त में कि वह अपना दिमाग़ हमेशा अपने घर की एक आलमारी में बंद रखता है। इसी कारण

उसकी बातें कभी-कभी मजाक मे उड़ा दी जाती हैं। तो सुरिन्दर लाल के पास अपनी साली की शादी का प्रस्ताव लेकर गया तो मित्रवत् साफ नकार गए। कहने लगे कि उनके यहां अपने ही रिश्तेदारो से शादी करने का रिवाज है। मसलन, उनकी मां ने पिताजी से शादी की थी, दादा ने दादी से की, काका ने काकी से की वगैरह वगैरह। एक पूरी लिस्ट है इस परम्परा की। इस सफाई के बाद हम वहा से बैरंग वापस आ गए।

दूल्हे की तलाश चल रही है और वह नही मिल रहा है तो बड़ी थकान होती है। अपने अभिभावकों की इसी दुर्दशा को देखकर होशियार लड़कियां अपने आप किसी के साथ शादी तय कर लेती हैं। आम जनता इसे लव-मैरेज कहती है, लेकिन इसी बहाने लड़कियों को वर तो मिल जाता है। इधर मैंने अपनी साली को कई बार यह आइडिया दिया है कि लव-मैरेज कर लेने से उत्तम रास्ता किसी भी भारतीय ललना के लिए शेष नही रह गया है। दूल्हो का ऐसा अभाव हो गया है कि बिहार के कई इलाको मे तो लोग लड़को का अपहरण कर अपनी लड़कियों के हाथ पीले कर डालते हैं। वरो की तलाश मे दौड़ते-दौड़ते हम लोग खुद पीले हो गए है। बदहवासी का आलम यह है कि इस साल मैं अपनी शादी की सालगिरह तक भूल गया। कल रात जब घर में घुसा तो टेबुल पर एक चिट्ठी पड़ी मिली—'आज हमारी शादी की सालगिरह है। जाकर बेड रूम मे देखिए, कितना शानदार उपहार पलंग पर रखा है।'

दौड़ा-दौड़ा बेडरूम मे गया तो देखा पलंग पर हमारी श्रीमती जी सो रही हैं। नए दूल्हे की तलाश तो समाप्त नही हुई है, लेकिन मेरी भूतपूर्व दुल्हन को उसका भूतपूर्व दूल्हा मिल गया है।

हमारे लायक कोई सेवा

माफ कीजिएगा ! बहुत दिनों के बाद आपकी सेवा मे हाजिर हुआ हूं। इसका एकमात्र कारण यही है कि सेवा कार्य के लिए कुछ अन्य क्षेत्रों में भी मेरी मांग बढ़ गई है और वक्त-बेवक्त मुझे कई इलाकों की सेवा करनी पड़ती है तो अब आपकी सेवा मे हाजिर हूं। फरमाइए, हमारे लायक कोई सेवा हो तो…!

जी बिल्कुल सही कहा आपने ! यह विशाल देश एक के बाद एक सेवकों से वीरान होता जा रहा है। पंडित नेहरू चले गए, शास्त्री जी नही रहे, निराला जी चल बसे, फिराक भी दिवंगत हो गए। देश और साहित्य के वैसे सेवक इन दिनो कहां रह गए हैं। हालत यह है कि इन दिनों मैं भी बीमार चल रहा हूं। लगातार इस चिन्ता मे घुला जा रहा हूं कि इस देश से सेवाधर्म का लोप हो ही जाएगा क्या? लेकिन नहीं, सेवा की राजधानी एक्सप्रेस अभी बंद नहीं हुई है। उसे हर छोटे-बड़े स्टेशन पर लाईन-क्लीयर मिल रहा है। सेवा ही धर्म है। मैं हूं आप सबकी सेवा के लिए। हमारे लायक कोई सेवा बताए…!

हे सज्जनों और सुमुखियो ! बरसात का सीजन आ गया है। काले-काले बादलों को देखिए जो घुमड़-घुमड़ कर गर्जना कर रहे हैं जैसे वीर रस का कोई कवि मंच पर शोर मचा रहा हो। काले-काले मेघों से बिजली बार-बार चमक रही है, जैसे कोई गृहणी अपने इकलौते पति को बार-बार डांट रही हो। लगातार बारिश के कारण लोग जहां-तहां छिपे हुए हैं, जैसे पतियों का समूह पत्नियों के भय से अखबार में मुंह छिपा चुका हो। जल भर जाने से सड़कों पर झील और नदियों का सीन उपस्थित हो गया है, मानो किसी सिनेमा हाल में नई फिल्म लग गई हो। सब ओर हरियाली छा गई है, धरती पर सब कुछ बदल गया

है, मानों किसी वेतनभोगी का ट्रांसफर ऊपरी आमदनी वाली जगह पर हो गया हो। ऐसी ही बारिश को देखकर कभी इंशा अल्ला खां ने फरमाया था कि—

'लगी है मेंह की झड़ी चलो बाग में झूलें।
कि झूलने का मजा भी इसी बहार में है।।'

लेकिन बारिश की बहार में झूलने का मजा बटोरने लायक पोजीशन में अभी आपका यह बंदा नहीं है। अभी तो हम सेवा के मूड में हैं। सच तो यह है कि बरसात ने हमारे सामने सेवा के अनन्त चांस परोस दिए हैं। सब ओर पानी ही पानी है वातावरण में सेवा की गंध समा गई है। मैं सोता हूं तो सेवा में, जागता हूं तो सेवा में। सेवा और हमारे बीच दूसरी कोई पार्टी आजकल नहीं है। बाई-द-वे यह बात बता देना बहुत जरूरी है कि सेवा से हमारा इशारा हमारे मुहल्ले की कुमारी सेवा श्रीवास्तव से क़तई नहीं है। कुमारी सेवा श्रीवास्तव में यह अनूठी प्रतिभा है कि उनकी एक आंख मारने से पर्दा हट जाता है और दूसरी आंख मारने से छोरा पट जाता है। लेकिन यह किस्सा फिर कभी, अभी तो मैं खालिस सेवा की चर्चा कर रहा हूं कि बरसात ने हमारे सामने, बहुत सारे अवसरों का स्टाक जमा कर लिया है। आप हमारे लायक सेवा तो बताइए…!

प्रसन्नता की बात है कि इस वर्ष हमारे गांव की ओर बड़ी अच्छी बाढ़ आई है और मैं बाढ़ग्रस्त इलाके की सेवा का चांस नहीं खोना चाहता हूं। बस एक अदद हेलीकाप्टर का सवाल है। इधर हेलीकाप्टर का इन्तजाम हुआ उधर मैं बाढ़पीड़ितों की सेवा के लिए सीन पर हाजिर हुआ। अपने अब तक के सेवाकाल में मैंने ऐसी अनेक बाढ़ें देखी हैं और हर बार परम सन्तोष का अनुभव किया है। अकाल और दंगे भी देखे हैं लेकिन बाढ़ देखने का मजा ही कुछ और है। गांव-के-गांव बाढ़ में डूबे रहते हैं, गांव के मर्द घर का सामान बचाने में व्यस्त रहते हैं और ग्राम वधुएं हिन्दी-साहित्य के श्रृंगारकाल को साकार करती रहती हैं। हर साल की तरह इस साल भी मैं सेवा करने के लिए तैयार हूं। प्लीज़ इस

बाढ़ग्रस्त गांव का पता बताइए, जहां की कन्याएं और युवतियां देखने मे देखने लायक होती हैं।

सेवा करने का अपना मिशन मैं अपने शहर मे भी पूरा कर सकता हूं। मैं इस शहर की सड़कों की सेवा करना चाहता हूं जिनकी शक्ल इस बरसात ने बिगाड दी है। ऐसा आइडिया इतनी होशियारी से सड़क की मरम्मत करने का है कि अगले साल बरसात मे सड़क एक बार फिर मरम्मत का इन्तजाम करने लगे। आशा है मुझे ही सड़कों के उद्धार का ठेका प्राप्त होगा। हो सकता है कि बरसात में बनाई गई सड़कें अगले साल तक ठीक ही रह जाएं, लेकिन मेरा पूरा विश्वास है कि दो बरसातें झेलने के बाद सड़क जरूर बुरी तरह घायल हो जाएंगी। अभी नई सेवा शुरू की है इस क्षेत्र में अनुभवी जनसेवक ठेकेदार तो इतनी खूबसूरती से सड़क बनाते हैं कि आगे सड़क बनती जाती है और पीछे-पीछे मरम्मत का कार्यक्रम भी शुरू हो जाता है। सड़क मरम्मत करने की कला तो मेरी सेवा का एक नमूना है। दरअसल बरसात के इस सीजन में मेरी आत्मा हर कदम पर सेवा करने के लिए व्याकुल रहती है।

कल शाम की बारिश का हाल सुनेंगे आप ! सेवा का ज़माना ही नहीं रह गया है, वरना कल शाम सेवा का जैसा गोल्डन चांस मिला था, उसे कोई भला आदमी नही छोड़ना चाहेगा। मेन रोड पर घनघोर बारिश के बीच मैं चला जा रहा था कि साइड में एक सुकन्या भीगती हुई नज़र आई। उसे बेतरह भीगता देखकर सेवा करने का सनातन उत्साह जोर मारने लगा और हमने अपने छाते में उस हसीना को चलने का निमंत्रण दिया। लेकिन कन्या की फरमाइश यह थी कि छाता उसी के पास रहे। हम ठहरे जन्म के सेवाव्रती। छाता उसे तपाक से सौंप दिया और खुद बारिश में सराबोर होने लगे। जल्दी ही पोजीशन यह हो गई कि हम तो नख से लेकर शिख तक पानीयम हो गए थे और वह सुन्दरी हमारा छाता लेकर लापता हो गई। इधर हम अपने-आपको बारिश की बूंदों से बचा रहे थे और उधर सुन्दरी अपने आप को हमसे बचाती हुई हमारे छाते के साथ न मालूम कब, न मालूम किस गली

समा गई। सेवा भावना के इस परिणाम पर अभी हम विचार कर ही रहे थे कि सामने से एक सुन्दर जोड़ी आती हुई दिखी। पत्नी का पूरा का पूरा शरीर छाते के बाहर था क्योंकि महिला के शरीर के आयतन से छाते का आकार छोटा था। उनके पति बेचारे भीगते हुए चल रहे थे। मुझे अफसोस हुआ कि हमारे पास छाता नहीं है वरना पति महोदय की जरूर ही सेवा करता।

एक बार ऐसी ही घनघोर बारिश में हमने एक डाक्टर साहब की सेवा की थी। मैं उनके ही मुहल्ले में गया था और यह देखकर अत्यन्त संतप्त हुआ कि मात्र पन्द्रह रूपये फीस होने के बावजूद कोई मरीज उनकी सेवा मे नहीं जा रहा था। हारे को हरिनाम की तरह मैं उनकी सेवा में गया और उनसे बोला कि जरा मेरे घर चलकर मेरी पत्नी को देखें। बेचारे डाक्टर ने उस मूसलाधार बारिश में कार निकाली और मुझे लेकर बाईस किलोमीटर का सफर तय कर मेरे घर आए। कार से उतरते हुए मैंने उन्हें धन्यवाद दिया और उनकी फीस भी सौंप दी। डाक्टर साहब मेरी पत्नी के बारे में पूछने लगे तो मैंने अपनी सेवा भावना को स्पष्ट कर दिया। इस बरसात में कोई टैक्सी पचास रुपये से कम में नहीं मिल रही थी। लिहाजा मुझे डाक्टर साहब की सेवा करनी पड़ी। बिना किसी रोगी को देखे उन्हें फीस मिल गई। इस किस्म की सेवाओं के लिए मैं सदा तत्पर हूं।

एक सेवा तो यही कर सकता हूं कि जब कभी इस बरसाती मौसम मे आपके कपड़े गन्दे हों, तब मैं आपको सही सलाह दूंगा कि किस लांड्री मे देने पर आपकी कमीज बिना बटन टूटे वापस मिल सकती है और आपकी धोती बिना फटे लौट आएगी। दरअसल नि:शुल्क सेवा का एक सिलसिला मेरे सामने है। कई बार मुझे देखकर संताप होता है कि लोग बारिश खत्म होने के बाद भी छाता लगाए घूमते हैं। ऐसे लोगों की भी सेवा मैं करना चाहता हूं। लोग अपना-अपना छाता लेकर पधारें, मैं सबके छातों में बड़े आकार का एक छेद कर दूंगा, ताकि भविष्य में उन्हें पता चल सके कि बरसात चल रही है अथवा रुक गई है। ऐसा

करने के लिए मैं आप सबका आपके रंग-बिरंगे छातों के साथ इन्तजार कर रहा हूं।

मेरे घर पधारने वाले हर सज्जन और दुर्जन का एक सूत्री कार्यक्रम यही रहता है कि मैं उनकी सेवा करूं। अपने ही घर मे लोगो से इतना घिरा रहता हूं कि किसी और के घर जाकर सेवा करने का चांस ही नही मिलता। हमारे पडोसी मिश्रा जी तो महीनों से अपने घर बुला रहे हैं। उनकी पांच अदद कन्याएं भी इस लायक हैं कि उनकी सेवा करके मन को आनन्द प्राप्त हो सकता है। लेकिन व्यस्तता इतनी है कि उन कन्याओं की सेवा भी नहीं कर पा रहा हूं। मेरी कोशिश तो यही रहती है कि सेवा का कोई मौका चूकने न पाए। सडक पर और बस में, रेल में और कार्यालय में सब जगह लिखी हिदायतो के अनुरूप सेवा करने के लिए मैं तैयार हूं। लेकिन सारी की सारी फरमाइशें पूरी हो सकती हैं भलो? कोई अकेला आदमी कितनी सेवा कर सकता है? फिर भी हमारी कोशिश जारी है।

उस दिन बस में बैठते ही मैंने सिगरेट सुलगाई ही थी कि कन्डक्टर ने टोक दिया—'देखिए आप सिगरेट नही पी सकते। साफ-साफ लिखा है वहां—सिगरेट पीना मना है। आप पढ़ नही सकते क्या?

मेरे मन में आया कि कहूं—पढ़ तो सकता हूं मैंये लेकिन मैं क्या-क्या पढ़ू और किस-किस हिदायत के अनुसार सेवा करूं। मैं जहां बैठा था उसके पास ही एक बोर्ड पर लिखा था कि हमेशा हैन्डलूम की साड़ियां ही पहनिए। अब भला यह सेवा मैं कैसे कर सकता हूं। एक बार किसी पाच सितारा होटल में भटक रहा था तो वहां हर पांच कदम के बाद एक डिब्बा रखा मिला जिस पर लिखा था—यहां थूकिए। अब साहब हम थूकते-थूकते परेशान हो गए। हारकर एक सज्जन से सवाल किया कि भाई साहब अगर किसी का थूक खत्म हो जाए तो वह इस होटल मे क्या करेगा। भाई साहब ने कोई जवाब नही दिया लेकिन मेरे सामने यह सब पूरी तरह उजागर हो गया कि हम सबकी फरमाइश पूरी नहीं कर सकते। हम और आप सब मिलकर सेवा का कोई अखिल भारतीय

प्रोग्राम बनायें, तो बात बन सकती है। जहा चार यार मिल जाते हैं, वहा रात गुलजार हो जाती है और जहां हम सब मिल जायेंगे वहां पूरे चौबीस घन्टों के गुलजार होने में देर नही लगेगी।

आगे समाचार यह है कि इन दिनों मैं मुख्य रूप से अपनी पत्नी की सेवा मे व्यस्त हूं। इसके बावजूद आपको बिना हिचक अधिकार है कि फरमाएं ! मेरे लायक कोई सेवा हो तो अवश्य बताएं।•••

नए एम० पी० का स्वागत

ऐ पॉलिश करने वाले छोकरे, ठीक से पालिश कर ! पता नहीं अब फिर कब पालिश करना नसीब हो तुझे ! बस, नए एम० पी० के आने की देर है । फिर तो उचक कर इम्पाला पर चढ़ ही जाएगा तू ! अबे ओ मूंगफली वाले ! तू भी कंजूसी मत कर। सीधे नमक की आठ पुड़िया थमा दे। अरे यार ! थोड़ी देर के बाद तो तू दिल्ली के अशोका होटल का मैनेजर बन जाएगा फिर कहां यह खोमचा और कहां मूंगफली ? बस नए एम०पी० के आने की देर है। अजी ओ बड़े बाबू ! क्यों परेशान हो रहे हैं आप ? बस, नए एम० पी० के आने की देर है। आप सीधे कलक्टर बन जाइएगा। आखिर पब्लिक का चुना हुआ एम० पी० आ रहा है कि मजाक है।

कुल मिलाकर वातावरण बड़ा सुधारवादी हो गया है। होनहार बिरवानों की पीढ़ी आज विशेष उत्साह में है। कोई रिक्शे से उतरने के बाद बिना किराया चुकाए गरीब की हाथ को अपनी वीरोचित घुड़की से दबा अहाते में घुस आया है। कोई अपने मुहल्ले की दूकान से नि:शुल्क उठा कर लाई हुई सिगरेटों का मुक्त हृदय से वितरण कर इस प्रकार प्रशंसित हो रहा है, जैसे विशुद्ध बाप का माल हो। कोई अपने कालेज के प्रिंसिपल को चुनी हुई लोकल गालियां देकर सहपाठी इष्टमित्रों की आत्मा को पवित्र कर रहा है। कोई अपने लम्बे बालों में निष्ठापूर्वक कंघी फेर रहा है। कोई चौड़ी बेल्ट के सदुपयोग का संदेश देकर सेब बेचने वाले कृशकाय बूढ़े की टोकरी में से कौतुकवश कुछ सेब उठा रहा है। सर्किट हाउस के आस-पास का वातावरण देश के इन भावी कर्णधारों के सहयोग से घोर उत्साहमय हो गया है। दूर से ही लगता है कि

हंसी-खुशी के ऐसे माहौल में देश प्रति मिनट तीन किलोमीटर की रफ्तार से सुनहरे कल की ओर बढ़ रहा है। भारतवर्ष के भविष्य के प्रति इस सीमा तक आशान्वित होने का सबल कारण यही है कि आज यहां नए एम० पी० का शुभागमन होने वाला है। बस, उनके आने की देर है। फिर क्या यह शहर ऐसा ही सडियल रह जाएगा? नए एम० पी० के पैर रखते ही धरती हीरे-मोती उगलने लगेगी। सारी सड़कें अपने आप साफ हो जाएगी। नालियों से बिनाका कोल्ड क्रीम की मदमाती सुगन्ध आने लगेगी। नलों से गंगाजल के साथ-साथ पाटंटाइम दूध भी सप्लाई होने लगेगा। तमाम गरीबों की झोपड़ी में फूल की मार्फत नोट बरसने लगेंगे। दूर-दूर तक गरीब और गरीबी का पता-ठिकाना नहीं मिलेगा। बस नए एम० पी० के आने की देर है।

आह! आ गए नये एम० पी०। भए प्रकट कृपाला। क्या निराली छवि है। भूषन वनमाला नयन विशाला। शारदा और शेष भी उनकी वर्तमान छटा का वर्णन ठीक-ठीक नहीं कर सकते हैं। नेति-नेति के सिवा और क्या कहा जा सकता है?

वे खुली कार में आये हैं। कार में मात्र छः प्राणियों के योग्य स्थान है, तथापि उदार हृदय एम०पी० ने चौदह-उत्साही जनों को चढ़ा लिया है। उनका वश चलता तो कुछ अन्य लोगों को कार के विभिन्न बचे हुए हिस्सों पर भी बैठा लेते। इस विलक्षण भार और स्नेह के अतिरेकवश कार नितांत मंथर गति से चल रही है। प्राचीनकाल में गजगामिनी स्त्रियां इसी चाल में घूमती-फिरती थी। कार को सर्किट हाउस के अहाते के बाहर ही रुकना पड़ा है। महामानव समुद्र उमड़ा है यहां। ऐसे में कार अहाते के अन्दर कैसे जाएगी!

महामहिम एम० पी० महोदय अपनी कार से उतर रहे हैं। जनता का बहुमत है कि पास पड़ा कूड़े का ढेर उनकी चरण-धूलि सटते ही बिस्कुटों में बदल जाएगा। अफसोस इस बात का है कि चमत्कार घटित होने से बाल-बाल बच गया। लोगों ने एम० पी० को जमीन पर उतरने ही नहीं दिया। एम० पी० अपने चरण कमलों को कष्ट देकर सर्किट

हाउस के बरामदे तक जाना चाहते हैं, लेकिन जनता यह बर्दाश्त करने के लिए तैयार नहीं कि उनकी आंखों के तारे एम० पी० की सुकोमल चप्पलों में धूल लगे। सो, लोगों ने कंधे पर टांग लिया है। ऊपर उठने पर भी एम० पी० का चेहरा पूरी तरह नहीं दीख रहा है। शताधिक फूल-मालाओं से बोझिल है। उनकी गर्दन एवं नाक भी पुष्प मालिकाओं में डूबी हुई है। देश की युवा शक्ति उनकी जय-जयकार मचाने में व्यस्त है। अब यात्रा बरामदे तक पहुंच गई है, लेकिन बरामदे में पहुंचकर भी लोगों ने एम० पी० को धरती पर नहीं उतारा है। एक टेबुल पर खड़े हो गए हैं श्रीमान् ताकि देश-देशान्तर से आए लोग उनके विधिवत् दर्शन कर अपने इहलोक एवं परलोक को संवार सकें। दोनों कर-कमलों को जोड़कर एम०पी० ने जनता-जनार्दन को प्रणाम किया। जनता धन्य हो गई। प्रणाम मिला, तो लाखों पाए। अपनी-अपनी जेबों में एम० पी० का प्रणाम भरकर धीरे-धीरे लोग वापस होने लगे, क्योंकि एम० पी० को लोगों ने सर्किट हाउस के एक कमरे में पहुंचाने का अनुष्ठान पूरा कर दिया है।

कमरे की दशा अनिर्वचनीय है। पलंग, टेबुल और सारी कुर्सियों पर एम० पी० के चमचे और बेलचे बिछे हुए हैं। फर्श की हर सेन्टीमीटर जमीन पर शहर के प्रतिभाशाली विद्यार्थी ज्ञान-पिपासु मुद्रा में खड़े हैं। और, अपनी सहज सज्जनतावश एम० पी० महोदय एक छोटे-से स्टूल पर सुशोभित हैं।

एम० पी० ने गले की मालाएं उतारनी शुरू की हैं। एक साथ कई हाथ इस कार्य में सहायक बन रहे हैं। जल्दी ही दर्शकों के सामने फूल-मालाओं की एक पहाड़ी कमरे के बीच बन गई, जिसे मनचले स्कूली छात्र उठाकर बाहर ले गये। कमरे में रह गये एम० पी०, उनके शिष्य और उनके भी शिष्य! भीड़ अब संतुलित और चुनी हुई रह गई है। एम० पी० ने चैन की दीर्घ सांस ली है और यह देखकर शेष जन बेचैन हो गए हैं।

सबने एक-एक कर अपनी समस्याओं का प्रस्तुतीकरण एम० पी० के

सामने शुरू कर दिया है। एम० पी० पानी पीना चाहते हैं और लोग उन्हें वचनामृत पिला-पिलाकर संतुष्ट कर रहे हैं। थकान के मारे एम० पी० की आंखें बार-बार झुक रही हैं, लेकिन जनता का उत्साह कम नहीं हुआ है। लोग एम० पी० की आंख में उंगली डालकर अपनी बात सुनाने के लिए कृतसंकल्प हैं। ढेर सारी समस्याओं और घटनाओं की सप्रसंग व्याख्या करने के बाद जब सामान्य जनों की वाणी शान्त हुई, तो छात्र वर्ग के विशिष्ट जन सामने आए।

छात्रों ने एम० पी० के सामने उस युगांतकारी समस्या को प्रस्तुत किया, जिसके फलस्वरूप हमारा देश अभी तक अमेरिका और रूस के मुकाबले में खड़ा नहीं हो सका है। यानी देश तो आगे बढ़ना चाहता है लेकिन इस विश्वविद्यालय का मूढ़ कुलपति बी०ए० की परीक्षा की तिथि न बढ़ाकर उसके मार्ग में खासे बड़े साइज के रोड़े अटका रहा है। छात्रों का विश्वास है कि बी०ए० की परीक्षा की तिथि बढ़ा दी जाय तो भारत रातों-रात टाप पर पहुंच जायेगा, इतना तय है।

एम० पी० ने भी समस्या की गम्भीरता को अपने सूखे गले और थके शरीर में महसूस किया है। उन्होंने तत्काल आशा व्यक्त की है कि विश्वविद्यालय के कुलपति आदि कीट-पतंग जैसे प्राणी इस ज्वलंत समस्या का समाधान शीघ्र करेंगे।

छात्रों का यह भी आइडिया है कि उनसे जो टकराता है, वह चूर-चूर हो जाता है और अब मन्दमति कुलपति के चूर-चूर होने के दिन निकट आ गये हैं। कुछ विद्यार्थियों का यह भी मत है कि कुलपति को चूर-चूर करने की खास जरूरत नहीं है उस शठ का इस्तीफा ले लेना ही पर्याप्त होगा, अन्यथा यह देश कभी तरक्की नहीं कर सकेगा।

इस शास्त्र-चर्चा में एम० पी० का मन नहीं लग रहा है। वे आराम करना चाहते हैं इसी समय नगर रिक्शा संघ के सम्मानित सदस्यों का सहसा प्रवेश कमरे में हो रहा है। उनका विचार है कि एम० पी० को इसी क्षण मृत रिक्शा चालक घुरहू प्रसाद की शव यात्रा में हिस्सा लेना चाहिए। जबकि छात्र-नेताओं की सम्मति है कि एम० पी० को सबसे

पहले शहीद स्मारक पर जाकर फूल और आंसू गिराना चाहिएं। कुछ लोग कुछ अन्य कामों में एम० पी० के सदुपयोग के लिए चिन्तित हैं। और एम० पी० के लिए इसके सिवा और कोई चारा नहीं रह जाता है कि आराम का संकल्प छोड़कर वे शहीद स्मारक या घुरहू प्रसाद की शव-यात्रा या किसी और स्थान पर जाकर जनसंपर्क करें। वे पूरी शक्ति के साथ उठ खड़े हुए हैं।

एक बार फिर फूल मालाएं उनकी सुराहीदार गर्दन में गिर रही हैं। लोग फिर उन्हें कंधे पर टाग चुके हैं। सब ओर एम० पी० की जय का निनाद हो रहा है। एम० पी० का स्वागत सर्किट हाउस के बाहर भी होने वाला है। बाहर खड़ी भीड़ ने पलक और पांवड़े दोनों रास्तों पर बिछा दिए हैं और अपनी तमाम बांछें खिलाकर महामहिम एम०पी० की प्रतीक्षा हो रही है। एम० पी० बाहर निकल आए हैं। इस बार भी वे कंधे पर आसीन हैं। उनका दुबला-पतला नाटा शरीर लगातार इस कंधे से उस कंधे पर ट्रांसफर हो रहा है। लेकिन लोग उन्हें जमीन पर उतारने के लिए तैयार नहीं हैं। यह खतरा भी बना हुआ है कि उनकी चरण-धूलि लगते ही शहर के सभी कूड़ेदानों में उत्तम कोटि के केक प्रकट हो जाएंगे। लिहाजा एम०पी० जनता के कंधों पर ही आसीन है। कार की ओर ले चलने का इशारा एम० पी० कर रहे हैं, लेकिन प्रेमीजन उन्हें कार में बैठाने के मूड में नहीं हैं। उनका तर्क यह है कि जनता के एम० पी० को जनता के साथ बिना कार चलना चाहिए। लाचार एम० पी० को कंधों पर ही चलना पड़ता है।

सड़क भरी हुई है। बीच में कुछ लोग एम० पी० को ढो रहे हैं, जब कभी एम० पी० गिरने लगते हैं, लोग उन्हे थाम लेते हैं। एम० पी० फिर आकाश की ओर उठ जाते हैं। हालत यह है कि एम० पी० को कंधा नामक नई सवारी के आविष्कार का पता चल रहा है और जनता को खुशी है कि नये एम० पी० का पूरा शरीर उस पर लदा हुआ है। हर मोड़ पर एम० पी० को हाथ मिलाना पड़ रहा है। कुल मिलाकर एम० पी० को लग रहा है कि स्वागत जोरदार है।

होली—2088

आज 15 मार्च, 2088 की दुपहरी मे हमारे शहर के अण्डरग्राउंड कंप्यूटर सेण्टर पर काम करने वाले कई स्वयंचालित रोबोट अचानक एक साथ शोर मचाने लगे। इस शोर के कारण कई शार्टसर्किट वाले रोबोटों का तो सारा सिस्टम ही क्षतिग्रस्त हो गया। मिनटों में प्रशासन को पता चल गया कि कम्प्यूटर सेण्टर के उपद्रवी रोबोटों ने एक दूसरे पर लुब्रिकेटिंग आयल का छिड़काव किया, जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय आय में 00.6489 प्रतिकोण की क्षति हुई। शारजाह मे जन्मी नीली आंखों वाली एक रोबोट कुमारी पर भी इस हलचल का असर देखा गया। उसने अपनी तमाम सहेलियों पर विक्षिप्ततावस्था के इस दौर में पालीथीन के अंडाकार गुब्बारे फेंके, जिनमे राशन-कार्ड पर इशु करने के लिए मानव-को परिशुद्ध कर बनाया गया जीवनरक्षक जल भरा हुआ था। दूरभाष के सुपर एक्सचेंज में तो कुछ रोबोट अपने साथ काम करने वाली मादा रोबोट से छेड़खानी करने पर आमादा हो गये। मैन्युफैक्चरिंग डिफेक्ट के कारण दाहिने पैर से जरा लंगड़ाकर चलने वाले एक बाईस वर्षीय रोबोट ने हलचल के इस दौर मे ऐसी छलांग लगाई कि अपने तमाम पुर्जे तोड बैठा और उसे राष्ट्रीय रोबोट निगम के कूड़ेखाने में पहुंचाया गया।

इन सारी गड़बड़ियों के तुरन्त बाद नगर प्रशासन की एक आपात-कालीन बैठक हुई। बैठक के पहले ही सुपर कंप्यूटर से इन विसंगतियो के कारण की जानकारी ली गई। सुपर कंप्यूटर ने बताया कि अब से सौ साल पहले इसी दिन हिन्दुस्तान में होली नाम का एक त्योहार मनाया गया था। उसी अतीत का एक झोंका शहर के कुछ इलाक़ों में घुस आया और इतनी सारी तबाही मचा गया। इस तबाही पर विचार-विमर्श के

लिए हुई बैठक में करीब चालीस प्रबुद्ध नागरिकों को प्रशासन ने आमंत्रित किया। इनमें सोलह तो रोबोट ही थे। बैठक की अध्यक्षता भी एक रोबोट ने ही की, क्योंकि उसके बुद्धि अंक सर्वाधिक थे।

अध्यक्ष—रोबोट ने यह मूलभूत सवाल उठाया कि होली किसे कहते हैं ? सभा में मौजूद रोबोट एक दूसरे का मुंह देखने लगे, क्योंकि सभी पच्चीस साल से भी कम उम्र के होली से अपरिचित यंत्र-मानव थे। बैठक में एक बूढ़ा आदमी भी था करीब साठ साल का। उसने अध्यक्ष रोबोट के पास अपना टेलीपैथिक संदेश भेजा कि वह होली के बारे में कुछ कह सकता है।

अध्यक्ष की अनुमति पाकर बूढ़ा आदमी कहने लगा—

'दोस्तों ! अपने बचपन में हमने सुना था कि होली के दिन हिन्दुस्तान के लोग एक दूसरे पर रंग और अबीर फेंका करते थे। हमारे डैडी ने बताया था कि लोग सड़कों से गुजरते थे, तो बच्चे बाल्टियों में रंग उनके ऊपर गिराते थे। हर मर्द-औरत होली के रंगों में सराबोर रहते थे। हमने भी अपनी जवानी के दिनों में चम्मचों-कटोरियों मे रंग भरकर मुहल्ले की भाभियों को भिगोया था। अब तो वह सब सम्भव ही नहीं है। हर इतवार को एक लीटर पानी सप्लाई होता है आजकल, लेकिन अब से सौ साल पहले लोग···।

सभा में मौजूद लोग चकित भाव से मुंह बाये यह सब सुन रहे थे। एक प्रतिभाशाली रोबोट से नहीं रहा गया तो वह बोल उठा—'हद हो गई, पहले का आदमी कितना पानी बर्बाद करता था'?'

बूढ़े आदमी ने कहा—'यही नहीं, आपको यह जानकर और भी अचम्भा होगा कि उस जमाने के लोग होली के दिन दूध और चीनी के बने तरह-तरह के पकवान खाते थे। इन दिनों चीनी के कैप्सूल मिलते हैं, जबकि सौ साल पहले चीनी बाजार में आठ रुपये में हजार ग्राम मिलती थी। चालीस रुपये में हजार ग्राम चीनी तो हमने भी खरीदी थी अपनी जवानी मे। चीनी के साथ दूध मिलाकर···।'

बात को बीच मे ही काटते हुए एक युवा आदमी ने पूछा—'दूध ?

उसी दूध का जिक्र कर रहे हैं जिसे हम अपने राशन-कार्ड पर दस बूंद प्रति यूनिट प्रतिदिन पाते हैं ?'

'हां वही दूध !'—बूढ़े आदमी ने कहा—'उसी दूध का खोआ बनाया जाता था, उससे तरह-तरह की मिठाइयां बनती थी। एक जमाने मे चावल और दूध-चीनी मिलाकर खीर बनती थी, जिस पर केसर और इलायची…।'

एक रोबोट ने बीच में ही यह मौलिक प्रश्न किया कि यह इलायची क्या चीज होती है ? बूढ़े आदमी ने सूचित किया कि राजधानी के राष्ट्रीय संग्रहालय के खानदान प्रकोष्ठ मे इलायची का एक दाना सुरक्षित रखा है, जिसका दर्शन किया जा सकता है। सभा के अध्यक्ष ने होली के बारे मे कुछ और जानकारियां चाही, तो बूढ़े आदमी ने होलिका जलाये जाने का उल्लेख किया। उन्होने बताया कि सौ साल पहले लोग शहर के चौराहे पर घर का कूड़ा एकत्र कर उसमें आग लगाते थे और चारो ओर से उसे तापते थे। उन्होने यह भी सूचित किया कि होलिका-दहन की यादगार में उनकी उम्र के बूढ़े लोग अपने गैस लाइटर को जलाकर ताप लिया करते हैं। इस जानकारी ने नई पीढ़ी को बेहद उत्तेजित कर दिया। एक नौजवान ने तो यह अफसोस जाहिर किया कि पुराने जमाने के लोग अपनी मूर्खतावश ऊर्जा के सबसे महान स्रोत कूड़ा-करकट को बुरी तरह नष्ट करते रहे। एक युवा रोबोट ने इस आशय का कानून बनाने का सुझाव दिया, जिससे होली के नाम पर बूढ़े गैस बर्बाद न करें।

2088 के प्रबुद्ध नागरिकों की सभा के अन्त मे होली मनाने की सौ साल पहले की परम्परा की तहेदिल से भर्त्सना की गई। आशा व्यक्त की गई कि देश के होनहार वैज्ञानिक कोई ऐसी तरकीब निकालेंगे जिससे होली जैसी पुरानी रूढ़ियों को हवा वायुमण्डल को दूषित न कर सके। उन सारे नर और मादा रोबोटों के खिलाफ 'कारण बताओ' नोटिस तत्काल जारी किया गया, क्योंकि अनुशासन ही देश को महान बनाता है—होली नहीं।

पुलिस प्रकरण की मानवता

एक मुहल्ले में पुलिस सम्प्रदाय के सज्जनों ने चन्द मिठाइयों को किसी मिष्ठान विक्रेता से बिना धन्यवाद प्राप्त किया, तो किसी दूसरे मुहल्ले मे पुलिस समुदाय के सदस्यों ने इसी शैली में कुछ पटाखे हासिल किये। बस बात इतनी-सी है और अफसाना बन गया।

होना तो यह चाहिए था कि इधर मिठाई की कोई दुकान सजती और उधर मिठाई का एक-एक टोकरा ससम्मान आसपास के सारे पुलिस कर्मियों के आंगन में पहुंच जाता। इधर गली में पटाखों की कोई दुकान खुलती और उधर सभी किस्म के पटाखों का एक-एक मिक्सचर पुलिस वालों के बाल-बच्चों को थमा दिया जाता। आखिर त्योहार के अवसर पर तो पुलिस को उसकी अथक सेवा के लिए याद किया जाय। लेकिन इस एहसान फरामोश देश की जनता को क्या कहा जाय? सब-के-सब बेहद कृतघ्न क़िस्म के लोग हैं। बेचारी पुलिस आम जनता के हितार्थ सुबह से शाम तक व शाम से सुबह तक व्यस्त रहती है और इतनी कठिन सेवा के बदले में चन्द मिठाइयां, कुछ पटाखे भी पुलिस को सादर समर्पित नहीं कर सकते हैं लोग? धिक्कार है! इन्हीं ओछे लोगों के बीच कानून और व्यवस्था, ट्रैफिक और क्राइम का इन्तजाम बेचारी पुलिस को करना पड़ता है। आखिर क्यों पुलिस के लोग इतनी जहमत मोल लेंगे? क्या इसीलिए कि दीवाली या किसी और पर्व त्योहार के मौके पर साक्षात पुलिस को मौका-ए-वारदात पर जाकर मिठाई और पटाखे वसूलना पड़ें? वास्तव में भारतीय जनता की कृतघ्नता और भारतीय पुलिस की सदाशयता की कोई सीमा नहीं है।

पुलिस की हर कार्रवाई और हर हरकत का जायजा लिया जाय तो मस्तक श्रद्धा से झुक जाता है। लोकमंगल की ऐसी बेचैनी किसी और में

नही है। जब-जब धर्म की हानि होने लगती है, पुलिस स्थिति मे सही सन्तुलन पैदा करने के लिए सीन पर हाजिर हो जाती है। किसी गांव मे महीने मे एक बार चोरी या डकैती की वारदात न हो तो यह उस इलाके की पुलिस के लिए लज्जा की बात होती है। ऐसी ही संगीन दुर्घटनाएं हर गांव मे घटने लगें, तो शायद पुलिस की प्रासंगिकता पर ही बहस होने लगेगी। इसीलिए पुलिस हर गांव और हर मुहल्ले मे सप्ताह मे एक बार चोरी का सघन कार्यक्रम चलाती है। इस पुनीत कार्य के लिए पुलिस को कुछ ऐसे नर-रत्नो का पालन-पोषण भी करना पड़ता है, जो वक्त जरूरत चोरी या डकैती का कार्यक्रम सम्पन्न कर सकते हों। कई इलाक़ो मे तो बेचारे दरोगा जी को ही इस प्रोग्राम का उद्घाटन करना पड़ता है। जनसेवा के एक अन्य क्षेत्र में भी पुलिस को पहलकदमी करनी पड़ती है।

भारतीय संस्कृति मे बलात्कार की अत्यन्त पुरानी महिमा है। अहल्या वाले केस के जमाने से ही बलात्कार के क्षेत्र में पुलिस चौकस है। जब किसी मुहल्ले में महीनों के बीत जाने पर भी बलात्कार की कोई अमानवीय घटना नही घटती, तो समस्त अघट घटनाओ की सूत्र-धार भारतीय पुलिस को ही बलात्कार का नमूना पेश करना पड़ता है ताकि जनता भारतीय सस्कृति के इस अनमोल अध्याय को भूल न जाए। इस महान सांस्कृतिक कार्यक्रम मे दरोगा, हवलदार, सिपाही सबको भाग लेने की छूट मिली हुई है। समाजवाद का इतना उत्तम प्रबन्ध कहीं और नही है। भारत वर्ष को नेताओं, दलालों, इन्जीनियरों और ठेकेदारों का स्वर्ग कहा जाता है, जबकि पुलिस का विनम्र निवेदन यह है कि इस लिस्ट मे पुलिस कर्मियों का उल्लेख भी होना चाहिए। आदर्श समाजवादी देश मे नागरिक का आर्थिक स्तर कितनी तेज़ी से ऊपर उठता है, इसके प्रमाण स्वरूप भारतीय पुलिस के किसी भी हवलदारोत्तर पदाधिकारी के घर मे झांका जा सकता है। बेचारे दारोगा साहब को कुल ग्यारह सौ रुपए वेतन के रूप मे प्राप्त होते हैं लेकिन उनकी आस्था समाजवाद में इतनी तीव्र है कि उनके घर पर कमरे मे एक अदद रंगीन

टी० वी० और किचन में एक अदद फ्रिज मौजूद है। देश का बहुमुखी विकास करने के लिए उन्होंने तीन शहरों में सिर्फ तीन लाख की लागत से तीन मकान बना रखे हैं। देश प्रेम की यह भावना पुलिस-सेवा में संलग्न हर प्राणी में कूट-कूटकर भरी हुई है। इसी कारण चौराहे पर तैनात सिपाही से लेकर वातानुकूलित कक्ष में बैठे बड़े अफसर तक में देश के विकास का संकल्प समान स्तर पर दिखाई पड़ता है। अगर कोई सिपाही किसी सब्जी वाले से चन्द टमाटर मांग लेता है या कोई सब-इन्सपेक्टर किसी स्टोर से चार साड़ियां मांग लेता है तो यह इन महामानवों की अगाध देश-सेवा के प्रतिदान में कुछ भी नहीं है। यह तो आम जनता का कर्तव्य है कि वह पुलिसकर्मियों की सुख-सुविधा का ध्यान रखें।

जब जनता अपने अधिकार और कर्तव्य भूल जाती है, तब पुलिस को सक्रिय होना पड़ता है। हमारे मुहल्ले के चौक पर जिन हवलदार की ड्यूटी रहती है वे धरती के अन्य सिपाहियों की तरह रुपए-पैसे को हाथ नहीं लगाते हैं। उन्होंने पास के पान भंडार के साथ समझौता कर रखा है और सभी ट्रकादि चालक पान भंडार पर ही नजराना जमा करते है। लेकिन परसों एक नया अध्याय सामने आया। चौराहे पर आकर ट्रक रुका, तो हवलदार ने हमेशा की तरह ड्राईवरों को पान-भंडार पर भेज दिया। ट्रक ड्राईवर गोपाल के पास गया और बोला कि सिपाही जी अपने पच्चीस रुपये माग रहे हैं। पान वाले ने सिपाही से आखों की भाषा में पुष्टि की। सिपाही उस समय एक फल वाले से केले वसूल रहे थे। तेजी से उन्होंने इशारे का जवाब दिया। पान वाले से पच्चीस रुपये लेकर ट्रक ड्राईवर चला गया। शाम ढलने पर सिपाही जी पान की दुकान पर दिन भर की कमाई बटोरने जा पहुंचे और यह जानकर परम दुखी हुए कि ड्राईवर भारतीय पुलिस को चूना लगा गया। इस घटना से भी जनता का ओछापन सामने आया है और हम सब मुहल्लावासियों ने आपस में चंदा कर सिपाही जी को पच्चीस रुपये सौंपे। ऐसी हालत अत्यन्त चिन्ताजनक है। पुलिस का यह पावन धर्म है कि वह नजराना

सौगात आदि प्राप्त करे। इसमें बाधा पहुंचाना अधर्म और संस्कृति-विरोधी आचरण है।

लिहाज़ा, किसी सिपाही ने किसी दुकान से मिठाई या पटाखा या कुछ और वसूल लिया तो इस बात को अफसाना बनाने की कतई आवश्यकता नहीं है। अफसाना तो तब बनेगा, जब मुहल्ले में कोई दुकान खुले और हवलदार साहब को कुछ उपहार न मिले। अचम्भा तो तब होगा, जब थाने के सामने से कोई सुन्दरी गुज़रे और साईट पर मौजूद सिपाही खांटी भोजपुरी में कुछ बोल न छोड़े। कहानी तो तब बनेगी, जब पाकेटमार को पकड़ कर पुलिस बिना कमीशन लिए छोड़ देगी। अफसाना तब भी बनेगा, जब मिठाई और पटाखा वसूलने वाले पराक्रमी पुलिसकर्मियों को अगले साल पुलिस मैडल नहीं मिलेगा। इन्हीं महामानवों के कारण यह विशाल देश चल रहा है, वरना न जाने क्या होता···।

मेरी व्यंग्य-सृजन-प्रक्रिया और ये प्रिय व्यंग्य-रचनाएं

इधर साहित्यकर्मियों से उनकी सृजन-प्रक्रिया के बारे में पूछने का फैशन चल निकला है। मैंने देखा है कि पूछने वाले जितने गम्भीरता से यह सवाल करते हैं, उससे तिगुनी गम्भीरता के साथ लेखक अपनी सृजन-प्रक्रिया का ईस्टमैन कलर ब्योरा पेश करते हैं। मैं बार-बार लोगों को सृजन-प्रक्रिया की उदात्त यात्रा पर निकलते हुए देखता हूं और हर बार मुग्ध होता हूं कि कोई लेखक कैसे अपनी सृजन-प्रक्रिया का इतना सिल-सिलेवार वर्णन करता है। मेरा ख्याल है कि कोई लेखक आइने के सामने बैठकर साहित्य नहीं लिखता है कि इधर साहित्य का सृजन होता चले और उधर लगे हाथ सृजन-प्रक्रिया का साक्षात्कार भी होता रहे। दरअसल लेखक से पूछना ही नहीं चाहिए कि उसकी सृजन-प्रक्रिया का क्या समाचार है।

आपने कभी उस डाकिए से उसकी रचना—प्रक्रिया के बारे में पूछा है, जो बरसती हुई लू और जमी हुई बरसात में भी आपकी डाक लेकर हाजिर होता है। एक बार सुलगती हुई लू में दरवाजे पर उपस्थित पोस्टमैन से मैंने यह सहानुभूति जताई थी कि इतनी तपती दुपहरी में खुद चिट्ठियां लाने का कष्ट क्यों किया? डाक से भेज देते? लेकिन उस पोस्टमैन से उसकी सृजन-प्रक्रिया की पड़ताल न मैंने की और न किसी और ने की। गली-गली में घूमकर चन्दा वसूलने वाले महापुरुषों से, किसी ने नहीं पूछा होगा कि हे नरश्रेष्ठ! इस महान कार्य की पृष्ठ-भूमि में कौन-सी प्रक्रिया है? फिर भला लेखक से ही क्यों पूछा जाता है कि उसकी सृजन-प्रक्रिया क्या है? मैं 1968 से व्यंग्य लिख रहा हूं

और आज तक नही जान सका कि मेरी रचनाओ की कोई सृजन-प्रक्रिया वगैरह भी है। अगर कहीं कोई सृजन-प्रक्रिया जैसी चीज है तो उसका रिश्ता मेरी व्यग्य रचनाओ से है, मुझसे नही। अपनी हर रचना की एकदम निजी नितांत अलग सृजन-प्रक्रिया का साक्षात्कार मैंने किया है। क्योंकि कोई भी व्यंग्यकार, या कोई भी रचनाकार सृजन के मानक सूत्रों के सहारे सही सृजना नही कर सकता। सूत्रों के सहारे रचना करना लक्षण-उदाहरण प्रस्तुत करने की मध्यकालीन परम्परा का अनुगमन करना होगा। उस जमाने के कवि पहले नायिका की साईज तय कर लेते थे और फिर उस नापतौल की एक अदद नायिका सरे दरबार पेश कर देते थे। मौजूदा रचना-धर्मिता इतनी आसान नहीं है। और फिर व्यंग्य-लेखन ? वह तो तलवार की धार पर धावने के समानान्तर है।

लूनाचार्स्की ने कहा है कि रचनाकार तभी महत्वपूर्ण हो सकता है जब वह कुंवारी धरती को जोतता है, जब वह अपनी अंत :-प्रज्ञा द्वारा एक ऐसे क्षेत्र मे प्रवेश करता है जहा तर्क और आंकड़ों का प्रवेश वर्जित है। व्यंग्य—लेखन इस स्थिति का जीवंत प्रमाण है कि सम्प्रेषण रचनाकार के अनुभवो को किस हद तक प्रभावित करता है और अनुभवगत सम्प्रेषणीयता किस सीमा तक अभिव्यक्तिगत सम्प्रेषणीयता के साथ घुल-मिल जाती है। गद्य की क्रियात्मक लय से जुड़ी चुस्त—बयानी का अनूठा उपक्रम है व्यंग्य—लेखन, जिसकी संरचना और अर्थसौरस्य की प्रक्रिया एक विरल आस्वाद की प्रस्तावना करती है। आत्मनियंत्रण की विरल योजना के सहारे सतही राग-द्वेष से ऊपर उठकर जब कोई रचनाकार प्रायोजिनिक व्यंग्य-सृजन करता है तभी व्यंग्य का ध्वंसात्मक, परिवर्तनकारी चरित्र सामने आता है। व्यग्य किसी लेखक की निजी टिप्पणी नहीं है। यह प्रयोजनशील सघनता से निःसृत यथार्थ की अभिव्यक्ति है। व्यंग्य परिवेश की बहुस्तरीय जटिलताओं को उघाड़ते हुए उस बिन्दु तक अपने पाठकों को पहुंचाने में समर्थ है जहां छद्मपरायणीय तौर-तरीकों के बीच अपने होने का एहसास पाठक को बुरी तरह [illegible] जाते।

हिन्दी के व्यंग्यकारों की लम्बी कतार में अपने को कहीं पाकर मुझे संतोष होता है कि मैं लेखकों का लेखक नहीं हूं। वरना साहित्य के इलाके का ताजा समाचार यह है कि खासी संख्या में ऐसे स्वनामधन्य रचनाकार सीन पर मौजूद हैं जिनका महान साहित्य सिर्फ उन्हीं के द्वारा पढ़ा जाता है अथवा उनके चंद समानधर्मी सज्जनों को पढ़ने के लिए बाध्य किया जाता है। मुज्तबा हुसैन ने एक ऐसे होनहार लेखक का जिक्र किया है जो खुद भी अपनी रचनाओं से चार बांस चौबीस मीटर दूर रहना पसन्द करता था। मुझे संतोष है कि मेरा लिखा बहुतों के अनुभवों का साझीदार है और आगे भी होता रहेगा। दरअसल यह कोई मेरी खासियत नहीं है, व्यंग्य-लेखन की ईमानदारी का प्रतिफल है। वे सारे लेखक हार्दिक मुबारकबाद के पात्र हैं जो पूरी सफाई के साथ अपने आसपास की सारी विसंगतियों से कतराकर निकल जाते हैं—फूलों और तितलियों से भरी घाटी में घूमते हैं, पनघट से गागर लेकर चली आ रही ग्रामवधू के नाभिकुण्ड में जाकर डूब जाते हैं। अखबार में डकैतों के नेता के रूप में पुलिस इन्सपेक्टर की गिरफ्तारी का समाचार छपे और भूख से व्याकुल होकर तीन संतानों के साथ किसी मां की आत्महत्या की सूचना मिले, तो पता नहीं कोई कैसे हवा की पीठ पर सवार होकर हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर जा पहुंचता है। विघटन और मूल्यहीनता के चरम दौर में आत्मा की धवलता का राग अलापना प्रथम श्रेणी की बेईमानी ही तो है। व्यंग्य-लेखन एक जगे हुए जीवंत रचनाकार की कारीगरी है। हर रोज तरह-तरह की घटनाएं घट रही हैं। और व्यंग्यकार की मजबूरी यह होती है कि वह खबरों को अखबार में पढ़कर अगले कालम की ओर नहीं बढ़ जाता, अपितु हर खबर उसकी सृजन-प्रक्रिया का हिस्सा बन जाती है। भ्रष्टाचार और अपहरण, लूट और बलात्कार, हत्या और हड़ताल के अनेकानेक शीर्षक व्यंग्य-लेखन को उकसाते हैं। व्यंग्यकार के मन में देशदशा की फिल्म लगातार चलती रहती है। हर नया दृश्य, हर नई खबर उसकी सर्जना को उत्साहित करती है। उसकी सर्जना हर पाठक के मन में देशदशा की उसी फिल्म

को एक साथ रिलीज़ कर देती है।

व्यंग्य वह ईमानदार विधा है, जिससे गुजरते समय आप यह सोचने के लिए विवश हो जाएंगे कि वह क्या बात है जो रचनाकार के मन में बुरी तरह कुलबुला रही थी और अंततः सृजन के रूप में सामने आयी। वह क्या बात है—जिसने व्यंग्य को इतनी धार दी है, सर्वथा भिन्न मानसिकता वाले लोगों को भी सोच के धरातल पर एकत्र कर दिया है। एलिक वेस्ट ने एक जगह लिखा है कि अच्छा लेखक समाज की उत्पादक ऊर्जा को सक्रिय रूप से अनुभव करता है और उससे अपना तादात्म्य स्थापित करता है। इसी चमत्कारपूर्ण तादात्म्य को एलिक वेस्ट ने साहित्य-सृजन की प्रेरणा माना है। रचनाकर्म का पहला स्तर यही तो है कि रचनाकार अपने चारों ओर फैले अनुभव—संसार से सर्जनात्मक माँग के अनुरूप सम्प्रेषण की जमीन तैयार करे, तभी सर्जना का विस्फोट होता है। व्यंग्यकार संघर्षों और विरोधों के बीच उभरते अनुभव का समाकलन इस तराश से करता है कि युगीन सत्य की निर्मम शल्यचिकित्सा में उसकी सर्जना संलग्न दीखती है। व्यंग्य-दृष्टि अपनी सूक्ष्म और अंतरंग शल्य-क्रिया के दौरान कभी किसी अवांछित को काट-कर फेंक देती है तो कभी विगलित सत्य की जगह जीवन की प्राणोर्जा से बिंधी स्थिति का प्रतिरोपण करती है। व्यंग्य किसी आध्यात्मिक दृष्टि का परिणाम नहीं है, अपितु सर्जक का अनुभव इस विधा में एक तार को छूकर सहस्त्रों तार झनझना डालने की विलक्षण क्षमता का सगमन कर डालता है। हरिशंकर परसाई ने स्वीकार किया है कि अनुभव ही लेखक का ईश्वर होता है। लेकिन ऐसा अनुभव बेकार होता है यदि उसका अर्थ न खोजा जाए और विधिवत् विश्लेषण कर कोई तार्किक निष्कर्ष न निकाला जाए। व्यंग्यकार के अनुभवों का कोष विलक्षण होता है। मैं जिन दिनों 'स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य साहित्य' पर पी० एच० डी० का शोध-प्रबन्ध तैयार कर रहा था, वे मेरे गर्दिश के दिन थे। मैं और गर्दिश। गर्दिश और मैं। सब ओर गर्दिश ही गर्दिश, और कोई पार्टी मेरे और गर्दिश के बीच नहीं थी। इसीलिए अपने आसपास के अन्य रिसर्च-

र्थमियो को मैंने बहुत बारीकी से देखा। अपने व्यंग्य 'रिसर्चगाथा' मे मैंने उसी दौर की शोध-स्थिति के अनुभवों का पर्यटन किया है। मैं हर चरण पर चिंता करता हुआ पुस्तकालयों की धूल चाट रहा था और मेरे कई पराक्रमी मित्र पांच पुस्तकों का सुन्दर समन्वय एक नये शोध-प्रबन्ध के रूप में कर रहे थे। इसे लक्ष्य कर मैंने 'रिसर्चगाथा' में लिखा—

'ऐसे विषय पर रिसर्च करना शास्त्रों में सबसे अधिक कलात्मक माना गया है, जिस पर पहले ही कम से कम सात महापुरुषों को पी-एच० डी० मिल चुकी हो। ऐसे लोक-कल्याणकारी विषय पर रिसर्च करते समय शोधकर्ता को गाईड महोदय के लिए सब्जी, राशन, दूध लाने जैसी मूर्तकलाओ पर रिसर्च का भरपूर अवकाश मिलता है।'

अनुभवों ने ही मुझे पड़ोसियों और नेताओं, प्रौढ़ शिक्षा और पत्रकारिता, चुनाव और आयोग, साहित्य और होटल, शिकार और अध्यापन जैसे अनेकानेक संदर्भों पर व्यंग्य-लेखन के लिए प्रेरित किया है। अपने निजी व्यवहार से लेकर बड़ी से बड़ी राष्ट्रीय चिंता तक का विस्तार व्यंग्य-रचनाओं में होता रहा है। इसी कारण शरद जोशी ने माना है कि लेखन एक किस्म की दौड़-धूप है। इस दौड़-धूप मे इस मीमांसा की फुरसत किसे है कि व्यंग्य की सृजन प्रक्रिया किन स्तरों पर तेजतर हुई है। कई व्यंग्यकार जो कुछ दीखता है, उसे नोट कर लेते हैं और वक्त जरूरत ऐसी टीपों का इस्तेमाल अपनी व्यंग्य-रचनाओं के लिए करते हैं। रवीन्द्रनाथ त्यागी के पास मेरा शोध-ग्रंथ पहुंचा तो उन्होंने सूचित किया कि वे उसे पढ़ रहे हैं और नोट ले रहे हैं। कुछ अरसे बाद उनका व्यंग्य-संकलन 'भद्रपुरुष' आया तो उसमे मेरी पुस्तक से ली गई टीपो के आधार पर एक व्यंग्य भी नजर आया। इसी प्रवृति के कारण कई व्यंग्य-रचनाओं से गुजरते समय बाकायदा पर्यटन का मजा आता है। लेकिन मैं आम तौर से वही लिखता हूं जो लिखना चाहता हूं। ईमानदारी की बात तो यह है कि अपना कोई व्यंग्य मैंने अपनी प्रेरणा से नही लिखा है। कुछ रचनाकार बाहरी प्रेरणाओ से सृजन-प्रक्रिया को तीव्र करते हैं। मेरे सहपाठी के भीतर का कवि तब तक नही

जगता था, जब तक कोई प्रेरणा उसके मुख कमल पर अपने कर-कमलों से प्रहार नहीं कर देती थी और तब उसकी आह गान के रूप में फूटती थी। मुझे हमेशा सम्पादकों या आकाशवाणी वालों ने प्रेरणा दी है। अकसर मैंने फरमाइशी लेखन किया है। ऐसा नहीं है कि आप जब चाहें बैठकर कोई रघुवंश या दैत्यवंश लिख मारें। कम से कम मैं तो ऐसा नहीं कर सकता। आप मुझे कोई विषय देकर कल सुबह व्यंग्य की माग करें, मेरा व्यंग्यकार सक्रिय हो जाएगा। कल सुबह रचना आपको तैयार मिलेगी। लेकिन, तब जब मेरे सामने समय की कोई सीमा नहीं होती, व्यंग्यकर्म लगातार टलता जाता है—शिथिल रहता है।

एक बार कुछ लिखना शुरू करके उसे अधूरा छोड़ देने का सीधा मतलब मेरे लिए यही है कि वह रचना अधूरी ही रह जाएगी। मैंने अधिकांश व्यंग्य रचनाएं एक बैठक में लिखी हैं। सृजन-प्रक्रिया का आरम्भ रचनाकारों की एकाग्रता और अंत:केन्द्रण से मानने वाले मनःशास्त्रियों से मेरा मतभेद नहीं है। लेकिन यह एकाग्रता मेरे लिए शुरू से आखिर तक जरूरी नहीं होती। हर रचना की दो या तीन पंक्तियों तक ही संकट रहता है मेरे सामने। शुरू की दो या तीन पंक्तियों को बार-बार कई तरह से लिखकर अंत:केन्द्रण की कोशिश मैं करता हूं। बस शुरू की पंक्तियां जम जाए तो मुझे पूरी रचना खत्म कर देने में देर नहीं लगती। मैं शोर में लिखने का अभ्यासी हूं। मेरे बच्चे मेरी सृजन-प्रक्रिया के घनिष्ठ साक्षी हैं, जिन्हें मैं न अपनी बारात में ले जा सका और न मेरी पत्नी ही मायके से लाई। यह कोई धाकड़—भूंग कल्पना नहीं है कि मेरे कई व्यंग्यों का सृजन तभी हुआ, जब मेरी छोटी बेटी मेरी गोद में सोती थी। आपको विश्वास नहीं हो रहा होगा, लेकिन कई साहित्य-मर्मज्ञों की सृजन-प्रक्रिया तो एकदम अकल्पनीय रही है। पी० जी० वुडहाउस के बारे में कहा जाता है कि वे अपनी हास्य रचनाओं की सर्जना टहलते हुए करते थे। जोनाथन स्विफ्ट लिखने के लिए एकांत में चले जाते थे। एक बार तो वह पूरे वर्ष भर एकांतवास में रहे। मेरे जैसे गृहस्थ लेखक के लिए एकांत की कल्पना कितनी विकट

है, सो मैं ही जानता हूं।

राज शेखर ने काव्य-मीमांसा के दसवें अध्याय में पूरी कविचर्या बतलाई है, लेकिन यह नहीं बताया है कि जब लेखक की कलम टूट जाये और स्याही-कागज चुक जाएं, तब सृजन-प्रक्रिया कैसे जारी रहेगी ? दरअसल सृजन-प्रक्रिया के मूलाधार यही स्टेशनरी पदार्थ हैं ? मैंने आज तक ऐसे किसी लेखक के बारे में नहीं सुना है जिसने बिना मसि-काग़ज़ के सृजन किया है। कबीरदास जैसे कुछ अपवादों की चर्चा छोड़ दें, तो सम्भवतः कलम-कागज बिना सृजन-प्रक्रिया की कल्पना ही नहीं की जा सकती। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सप्ताह के हर दिन के लिए अलग-अलग रंगों के कागज इस्तेमाल करते थे। अलेक्जेंडर ड्यूमा नीले कागज़ पर उपन्यास, पीले कागज पर कविताएं और गुलाबी कागज पर लेख लिखता था। मेरे एक गुरु हिन्दी के जमे हुए हास्यकारों में से हैं श्री रामेश्वर सिंह काश्यप। उनके पास एक हजार से अधिक कलमों का अनूठा सकलन है। कभी इस कलम से लिखते हैं, कभी उस क़लम से। लेकिन स्टेशनरी की अतिशय सुविधा मात्र से किसी की सृजन-प्रक्रिया बुलेट ट्रेन नहीं हो जाती। सारी अभिजात सुविधाएं मिलने के बावजूद बेचारे कालिदास कुल तीन नाटक और चार काव्य ही लिख सके। जबकि हमारे मोहल्ले के एक कवि-कुल-कमल-दिवाकर ने कालिदास से आठ गुना लिखा है और उसमें से कुछ भी नहीं छपा है। दरअसल लिखने के लिए इतना ही काफी नहीं है कि हमारे पास स्टेशनरी का स्टाक कितना है। भट्टतोत ने जिसे नव-नवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा कहा है, उस प्रतिभा के बिना भला कुछ भी लिख पाना सम्भव है।

जी० पी० श्रीवास्तव का एक प्रहसन है—साहित्य का सपूत, जिसका नायक साहित्यानन्द हास्य लिखने के लिए यह नवीन और मौलिक युक्ति निकालता है कि पहले पेट भर हंस लो, ताकि जब पेट में हंसी ठसाठस भर जाए तो वह लेखनी द्वारा अपने आप अवश्य निकलेगी। और, चेखव ने एक जगह लिखा है कि दुःखी आदमी हास्य और व्यंग्य लिखता है। मुझे ऐसा लगता है कि संसार भर में जो लोग हास्य और व्यंग्य-लेखन

से जुड़े हैं, उनमें न तो कोई अतिशय विनोदी स्वभाव के होने के कारण हास्य लिखता है और न कोई वेदनावाद में डूबकर व्यंग्य लिखता है। वस्तुतः मौजूदा परिस्थितियां ही ऐसी हैं कि इन पर व्यंग्य के सिवा कुछ और नहीं किया जा सकता है। साम्प्रत परिवेश में केवल व्यंग्यकार ही वास्तविकता के साथ योद्धाओं की तरह लड़ सकता है। व्यंग्य का हथियारपन ही उसकी अन्यतम विलक्षणता है।

आज का व्यंग्य-लेखन एक ऐसे माहौल में उभरा है जिसमें विसंगतियों का प्राचुर्य एक सीधी नकारात्मक मुद्रा को निरन्तर उकसाता रहता है। अच्छे शेक्सपियर, अच्छे मतिराम और अच्छे गोर्की को अब योद्धा बनना पड़ेगा। व्यंग्यकार बनने के सिवा कोई और विकल्प नहीं है। इसी कारण व्यंग्य रचनाएं मनोरंजन और सुधारात्मक आग्रह न बनकर चिंतन की चीज बन गई हैं। व्यंग्यकार अपनी प्रतिभा से व्यंग्य गढ़ता है, लेकिन उनकी क़लम जान-बूझकर उन्हीं स्थितियों पर उठती है, जिनके केन्द्र में शोषण, विकृति और अनाचार है। व्यंग्यकार की प्रखर संवेदनशीलता समूह के दिमाग को खोलने और हृदय को फैलाने का काम एक साथ करती हैं। मौजूदा व्यंग्य लेखन पाठक को किसी हल्के-फुल्के इलाके में नहीं ले जाता, अपितु कुछ सोचने और करने के लिए विवश करता है। अपने आइने में व्यंग्य ने नंगे को नंगा दिखलाना शुरू किया है, कौवे को काला कहने का साहस उपस्थित किया है। व्यंग्य लेखन ने ही स्थापित किया है कि कलम हाथ में लेना बंदूक हाथ में लेने से अधिक खतरनाक और संजीदा काम है। मैंने खुद कई बार अनुभव किया है कि यह काम किस हद तक गंधक की सुरंग से गुजरने के समानान्तर है। एक व्यंग्य ने तो मेरी नौकरी के समापन का उत्तम प्रबन्ध कर दिया था। मित्रों और परिचितों की नाराजगी के तो अनेक अवसर आये हैं। हालत यह है कि मैं किसी कन्या को गौर से देखने लगता हूं तो उसकी सुमाता फरमाती है—'निरीक्षण हो रहा है क्या? कुछ लिखने का इरादा है? यह मेरी बड़ी लड़की है, प्लीज इस पर कुछ नहीं लिखना, हम लोग लड़का तलाश रहे हैं।' लिहाजा उस कन्या पर गौर करना छोड़कर मैं दूसरे

विषयों पर ध्यान देने लगता हूं। कभी-कभी इरादा होता है बिहारीलाल की रसिकता पर लिखने का और रचना का अन्त होता है थानेदार की पिटाई से।

मैंने जो कुछ लिखा है, वह सब कहीं-न-कहीं छपा है। सच तो यह है कि मैंने छपने के लिए ही लिखा है। कोई भी नई रचना तैयार कर सबसे पहले मैं स्वयं उस पर मुग्ध होता हूं और फिर अपनी पत्नी को मुग्ध होने के लिए बाध्य करता हूं। विवाहोत्तर-काल की मेरी सारी व्यंग्य रचनाओं की पहली श्रोता मेरी पत्नी ही होती है और सबसे पहली समीक्षा भी वही करती है। यह और बात है कि मैं उसकी समालोचना पर ध्यान दिये बगैर रचना को सादर प्रकाशनार्थ भेज देता हूं।

व्यंग्य लिखते समय जिस अकेली चीज पर मेरी कुछ सावधानता रहती है, वह उसकी भाषा है। रचनाकार अपनी सर्जना को भाषा के विशिष्ट उपयोग द्वारा केवल बेलबूटेदारी से चटक ही नहीं बनाता है, अपितु सम्प्रेषण की नई-नई मंजिलों की ओर भी अग्रसर होता है। जैसा कि अज्ञेय ने स्वीकार किया है, रचनात्मक भाषा कभी इकहरी नहीं होती। व्यंग्य-भाषा थोड़े अक्षरों में अमित अर्थ सम्प्रेषित करने की क्षमता का विस्तार है। शब्द व्यंग्यकार के हाथ में गीली मिट्टी की तरह है। उन्हें जैसा अर्थ और रूप वह देना चाहता है, देता है। एक सुपरिचित शब्द भी सर्वसम्मत अर्थ छोड़े बिना असंख्य अर्थछायाओं और अभिप्रायों का आधार बन जाता है, यह कई उदाहरणों से सिद्ध किया जा सकता है। मैं अपनी ही व्यंग्य रचनाओं से भाषिक नियंत्रण के कुछ नमूने पेश करता हूं। मेरा एक व्यंग्य है—'मेरे पड़ोसी', उसकी कुछ पंक्तियां हैं—

'उनके घर में इतनी थोक मात्रा में दर्शनीय किस्म की कन्याएं थीं कि वे किसी को भी छछिया भर छाछ पर नचा सकती थीं। एक बार उनके घर में आग लगी। आग पर काबू पाने में आधा घंटा लगा और फायर ब्रिगेड के जवानों पर काबू पाने में लगभग दो घंटे लग गये।'

कुछ और पंक्तियां एक दूसरे व्यंग्य 'नये एम० पी० का स्वागत' से प्रस्तुत करता हूं—

'होनहार बिरवानों की पीढ़ी आज विशेष उत्साह में है'। कोई रिक्शे से उतरने के बाद बिना किराया चुकाये गरीब की हाथ को अपनी वीरोचित घुड़की से दबा अहाते में घुस गया है। कोई अपने मोहल्ले की दुकान से निःशुल्क उठाकर लाई हुई सिगरेटों का मुक्त हृदय से वितरण कर इस प्रकार प्रशंसित हो रहा है, जैसे विशुद्ध बाप का माल हो। कोई अपने कालेज के प्रिंसीपल को चुनी हुई लोकल गालियां देकर सहपाठी इष्टमित्रों की आत्मा को पवित्र कर रहा है।'

यह व्यंग्य-भाषा सन्दर्भ विशेष की भित्ति पर फैल रही वह अभिव्यंजक लता है, जो कहीं शीतल और कहीं तप्त प्रभाव छोड़ती हुई लगातार अर्थ की लक्ष्यैकचक्षुता का निरूपण करती है। व्यंग्य-भाषा की चमत्कारपूर्ण विच्छलता और आस्वाद में गहरी उतरती हुई सहजता व्यंग्यकार की सावधानी और कारीगरी के प्रति आश्वस्त करती है। जिन शब्दों का प्रयोग कोई भी व्यंग्यकार अपने वाक्यबन्धों में करता है, वे आविष्कृत शब्द नहीं होते। डविशायर ने इसी सन्दर्भ में कहा है कि हम पुरानी गाड़ियों में नई यात्राएं करते हैं। मुझे प्रसन्नता होती है, जब मेरी हर यात्रा के विभिन्न पड़ावों पर मेरे पाठक मुझसे पहले हाज़िर होते हैं। यह स्थिति आज से पचास साल पहले के साहित्य की नहीं थी। इस बात को ओल्फास सुलेमेन्खोव ने भी अंगीकार किया है कि एक सामाजिक प्रक्रिया के तहत लेखक अपने पाठकों की अपेक्षा कम तेज़ी से बदल रहे हैं। यह बदलाव तेजी से मेरी रचनाओं में आये, यही तो कोशिश है मेरी, हर व्यंग्यकार की, हर सर्जक की। वस्तुतः व्यंग्य-लेखन बनावट और दिखावट भरे परिवेश में सच को पकड़ने की जोखिम भरी कोशिश है। इस जोखिम की सृजन-प्रक्रिया के बारे में खुद मेरा कुछ कहना प्रासंगिक होगा, भला ? आचार्य नलिन-विलोचन शर्मा की एक उक्ति याद आती है—यदि रचना बोल सकती है तो रचनाकार को मौन ही रहना चाहिए।

लेकिन, कोई कितना चुप रहे। विशेषतः जब किसी व्यंग्यकार से उसकी अपनी प्रिय व्यंग्य रचनाओं का चुनाव करने के लिए कहा जाय,

तो उसकी चुप्पी भला कैसे काम आएगी ? तीन अदद मौलिक व्यंग्य सकलनो और तीन अदद सम्पादित व्यग्य सकलनों के प्रकाशन के बाद यह संकट सामने आया है कि अपनी प्रिय व्यंग्य रचनाओं का चयन किया जाय। दरअसल इस असार संसार मे प्रियता का एक विशिष्ट दर्शन है। अधिकतर ऐसा होना आया है कि जब-जब किसी से सुख मिलता है, तब-तब वह प्रिय हो जाता है। इसका आलम यह होता है कि इधर सुख मिलता है और उधर वह प्रिय हो जाता है। यानी सुख मिलने मे देर लगती है, प्रिय बनने में देर नही लगती। इस कसौटी पर इस संकलन में एकत्र व्यंग्य रचनाएं मेरे लिए सुखकारी रही हैं और इसी कारण प्रिय भी है। इसका मतलब यह नही कि जो रचनाएं यहां अनुपस्थित हैं, वे मुझे प्रिय नही है। निज कवित्त भला किसे प्यारा नहीं लगता ? इसके बावजूद परोसने वाले, डाइनिंग टेबुल और थाली-बर्तन की सीमाएं हैं। इसीलिए, 'इस बार इतनी ही प्रिय व्यंग्य रचनाएं एकत्र हो सकी। शेष फिर कभी,' विशेष अब आप फरमाइये।



- प्रकाशित पुस्तकें—
  रिसर्च गाथा (व्यंग्य संकलन)
  बिना यात्रा की यात्रा (व्यंग्य संकलन)
  किराएदार साक्षात्कार (व्यंग्य संकलन)
  गोपनीय गृह उद्योग (व्यंग्य संकलन)
  बानगी (सम्पादित व्यंग्य संकलन)
  व्यंग्य ही व्यंग्य (सम्पादित लघु व्यंग्य संकलन)
  क्रिकेट कीर्तन (सम्पादित व्यंग्य संकलन)
  वचनदेव कुमार की व्यंग्य कविताएं (सम्पादित)
  हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य (शोधग्रंथ)
  रागदरबारी—व्यंग्य संदर्भ की परख (संपादित समीक्षा)
  हिन्दी व्यंग्य के प्रतिमान (समीक्षा)
- साथ ही, व्यंग्येतर समीक्षा—सृजन की छः अन्य पुस्तकें भी प्रकाशित
- 'किराएदार साक्षात्कार' के लिए बिहार सरकार के राजभाषा विभाग द्वारा शिवपूजन सहाय पुरस्कार से सम्मानित
- 'हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य' पर पटना विश्वविद्यालय से पी-एच० डी०, 'हिन्दी व्यंग्य लेखन का शैली वैज्ञानिक विश्लेषण' पर रांची विश्वविद्यालय से डी० लिट्०
- रांची विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में रीडर